ओ३म्

सरल
बाल सत्यार्थ प्रकाश

(कथा की शैली में सत्यार्थ प्रकाश का सरल बालोपयोगी संस्करण)

प्रणेता

(स्वर्गीय) वेद प्रकाश'सुमन'

भूमिका

(स्वर्गीय) आचार्य प्रेमभिक्षुः एम.ए.

सम्पादक

आचार्य स्वदेश

प्रकाशक

सत्य प्रकाशन

वेद मंदिर,वृन्दावन मार्ग

मथुरा - (उ.प्र.) २८१००३

सन् २००५ मूल्य १५/-रुपये

भूमिका

समय था जब हमारा महान् भारत विश्वगुरु था और था चक्रवर्ती सम्राट । 'सा संस्कृतिर्विश्ववारा' सारे विश्व में तब एक ही संस्कृति- वैदिक संस्कृति का साम्राज्य था यह वह समय था जब विश्व भर में एक ही धर्म-वैदिक धर्म, एक ही धर्मग्रन्थ-वेद, एक ही उपास्यदेव-ओ३म्, एक ही जातीय श्रेष्ठ नाम आर्य एक ही अभिवादन-नमस्ते, एक ही विश्व भाषा संस्कृत और एक ही सांस्कृतिक ध्वज-ओम् की प्रतिष्ठापना थी। पर समय चक्र घूमा और महाभारत के एक हजार वर्ष पूर्व से ही हमारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक पतन आरम्भ हुआ। महाभारत काल में इस पतन के अनेकों दृश्य विविध रूप में दिखाई देते हैं। पर सौभाग्य से उस काल में एक महान् आत्मा-योगेश्वर श्री कृष्ण के रूप में विद्यमान थी जिसने अपनी शक्ति भर इस महान् राष्ट्र के पतन को रोका। खण्ड-खण्ड भारत को उसने महाभारत बनाने का अनथक पुरुषार्थ किया, (शुद्ध) गीता के सन्देश के रूप में वैदिक कर्मण्यवाद या कर्मयोग का पाठ उन्होंने पढ़ाया और वैदिक संस्कृति के प्राणतत्त्व वर्णाश्रम धर्म की रक्षा की। किन्तु महाभारत के निर्माण-प्रयास में इतना मूल्य चुकाना पड़ा अथवा महाभारत युद्ध में इतने धन जन इतने विद्वानों,इतने शूरवीरों,कर्मवीरों,दानवीरों का बलिदान देना पड़ा जिससे श्री कृष्ण के इतने प्रयास करने पर भी यह राष्ट्र संभल नहीं सका।

पतन का जो दौर श्री कृष्ण के जीवन के अन्तिम चरण में ही आरम्भ हो गया था,वह निरन्तर जारी रहा। बीच-बीच में बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य जैसी दिव्य विभूतियों ने संभालने का प्रयत्न या आन्दोलन भी किया,किन्तु उनके प्रयास वैदिक जीवन धारा से कुछ भिन्न थे और उनकी शिष्य परम्परा में ये आन्दोलन वैदिक धर्म-धारा से और भी अधिक दूर होकर प्रायः विरोधी जैसे ही हो गये। परिणाम में घोर दरिद्रता,दीनता परतन्त्रता और अधार्मिकता ने हमारे राष्ट्र जीवन को जकड़ लिया। यह विश्वगुरु भारत शत सहस्र मत मतान्तरों और विदेशी सभ्यता का क्रीत दास बन गया। ऐसी घटाघोप अन्धियारी में विश्वात्मा प्रभु की दया से प्रकाश की एक किरण चमकी। योगेश्वर श्री कृष्ण के बाद उसी प्रकार की एक महान् आत्मा ने ऋषि दयानन्द के रूप में भारत माँ की कोख को धन्य किया।

ऋषि दयानन्द ने फिर से अतीत को वर्तमान करने,फिर से वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति और वैदिक युग को लाने के लिए अपने जीवन और जवानी को निछावर कर दिया। सांस्कृतिक पुनरुद्धार के इस पुण्य प्रयास में जहां क्रांति के अग्रदूत आचार्य दयानन्द ने सैकड़ों ही नहीं सहस्रों शास्त्रार्थ किये, जहां उन्होंने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हजारों मील की यात्रायें करके क्राँति का शंखनाद किया, वहाँ उन्होंने वेद और शास्त्रानुमोदित अपने क्रांतिकारी विचारों को अमरता देने के लिए इतनी व्यस्तता के बीच भी विपुल साहित्य का निर्माण किया। ऋषि दयानन्द के इस सम्पूर्ण साहित्य में वेद भाष्य जैसी विशाल ग्रन्थ सम्पदा से लेकर आर्योद्देश्य रत्न माला ओर गो करुणानिधि

जैसे लघु ट्रेक्टों तक एक एक पृष्ठ अनमोल है, किन्तु ऋषि कृत वांङ्मय में 'सत्यार्थ प्रकाश' उनके द्वारा की गई वैचारिक क्रांति का, सर्वाधिक तेजस्वी रूप में प्रतिनिधित्व करता है।

सत्यार्थ प्रकाश ऋषि दयानन्द की वह अमर कृति है, जिसे ऋषि के स्वाध्याय के ३००० ग्रन्थों का सार कहा जा सकता है। सत्यार्थ प्रकाश वेद और वैदिक सद्धर्म की कुंजी है। न जाने कितने भूले-भटके मानवों को वेद के राजपथ पर लाकर खड़ा करने का श्रेय इस पावन ग्रन्थ को है। अब तक विश्व की अनेक भाषाओं में इस दिव्य ग्रन्थ का अनुवाद एवं प्रकाशन हो चुका है। देश और विदेश के शत-शत मूर्धन्य व्यक्तित्वों ने इस पावन ग्रन्थ की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

इस ग्रन्थ-रत्न का सन्देश राष्ट्र की नई पीढ़ी बालक और युवकों के साथ ही कम शिक्षित जनों तक भी पहुंच सके इस विचार से हमारे निर्देशन में स्वर्गीय प्रिय वेदप्रकाश'सुमन' ने बड़े परिश्रम से इस सरल बाल सत्यार्थ प्रकाश' का प्रणयन किया। इस प्रकार के प्रयास और भी हुए हैं किन्तु बाल मनोविज्ञान के आधार पर कथात्मक शैली एवं भाषा की सरलता इसकी विशेषताएं हैं।

हर्ष है कि इस 'बाल सत्यार्थ प्रकाश' को खूब सराहा गया तथा कई आर्य विद्यालयों द्वारा धर्म शिक्षा की परीक्षा में और पुरस्कार वितरण के लिए इसे चयनित किया गया। प्रथम संस्करण की समाप्ति पर इसकी निरन्तर मांग बनी रही।

(स्वर्गीय) प्रेमभिक्षुः(आचार्य)

प्रकाशकीय

कथा शैली में विरचित 'बाल सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ ऋषिवर दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को जन सामान्य तक पहुंचाने वाला उत्तम माध्यम सिद्ध हुआ है। स्वर्गीय वेद प्रकाश जी सुमन द्वारा इस ग्रन्थ का प्रणयन कलम के धनी अपने पिता श्री आचार्य प्रेम भिक्षु जी के निर्देशन में किया गया इससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता द्विगुणित हो गयी है। आर्य जगत् में इस ग्रन्थ की आशा से अधिक मांग रही है। पिछले संस्करण समाप्त होने पर पुनः इसके शीघ्र प्रकाशन की आवश्यकता हुई क्योंकि पाठकों में अत्यधिक मांग हो रही थी। अतः सत्य प्रकाशन से पुनः इसका प्रकाशन लोक कल्याणार्थ किया जा रहा है। आशा और विश्वास है सत्यार्थ प्रकाश की अमूल्य शिक्षायें इस 'बाल सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ के माध्यम से बालकों व जन सामान्य में पहुंचेंगी जिससे व्यक्ति परिवार,समाज व राष्ट्र में नई धार्मिक चेतना का संचार होगा। सत्य प्रकाशन के लोक कल्याणार्थ चलाये जा रहे (साहित्य के माध्यम से) अभियान को बल मिलेगा।

'सत्यार्थ प्रकाश की उत्तम शिक्षा फैल जाय घर-घर में।
बाल-सत्यार्थ प्रकाश आपको देता हूँ, शुभ कर में।'

विषय-प्रवेश

चन्दनपुर गांव के मुखिया चौधरी चन्दनसिंह के पुत्र मोहन और उसी गांव के चौधरी सुजानसिंह के पुत्र सत्यपाल दोनों सैद्धान्तिक विचारों में पर्याप्त भिन्नता रखते हुए भी परस्पर घनिष्ठ मित्र हैं। सत्यपाल आर्य परिवार में पला नवयुवक है,जबकि मोहन ने पौराणिक वातावरण में आँखें खोली हैं। विचारों के इतने अन्तर के पश्चात् भी दोनों में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हैं।

पिछली दीवाली को महर्षि बलिदान पर्व मनाने के अवसर पर सत्यपाल ने गांव के जिन ४-६ मित्रों को आमंत्रित किया उनमें मोहन भी था। सत्यपाल ने आगन्तुकों को यथोचित आसन दे सामान्य प्रकरण, स्वास्तिवाचन,शान्तिकरण एवं विशेष आहुतियों के साथ पहले तो यज्ञ किया पश्चात् महर्षि महिमा और प्रभु भक्ति के मनोहर भजन और प्रेरक गीत गाये। अन्त में आगन्तुकों का धन्यवाद करते हुए यज्ञ-प्रसाद वितरण किया गया।

मोहन यह सारा दृश्य मन्त्र-मुग्ध की भांति देखता रहा। 'मगन ईश्वर की भक्ति में अरे मन क्यों नहीं होता' इस चेतावनी को सुनकर तो जैसे उसकी आँखें खुलने सी लगीं। उसके सोये हुए पूर्व जन्म के संस्कार मानो जाग उठे। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये,वह इतना ही कह सका,सत्यपाल भाई तेरा'ओम' हमें तो बहुत अच्छा लगा,तू तो कोई सतयुगी पुरुष है।' सत्यपाल ने विनम्र स्वर में कहा,'भईया,यह तो तुम्हारा बड़प्पन है जो तुम ऐसा कहते हो। हाँ**, यदि मेरे जीवन में तुमको कुछ अच्छा लगता है तो यह ऋषि दयानन्द की दया का ही फल है।'** एक पुस्तक को आगे करते हुए सत्यपाल ने कहा, देखो मित्र ! यह है **'सत्यार्थ प्रकाश' जिसने मेरे जैसे न जाने कितने भूले भटकों को सन्मार्ग सुझाया है,** अतः मेरा अनुरोध है कि आगे आने वाली वसन्त पंचमी के दिन से ही यदि तुम अपनी चौपाल पर सत्यार्थ प्रकाश की कथा का दो सप्ताह का कार्यक्रम रख सको तो अच्छा रहेगा। उसी क्रम में मैं प्रतिदिन एक एक समुल्लास को लेकर उसका सार संक्षेप अपनी सामर्थ्यानुसार आप सभी के समक्ष रखने का यत्न करूंगा। इस प्रकार यदि आप सभी की कुछ भी भ्रान्तियां दूर हो सकीं तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

मोहन बोला-मित्र! तुम्हारा सुझाव बड़ा ही सुन्दर है हमारे लिये तो यह सौभाग्य की बात है। मैं अभी से ही इस कथा को सुन्दर रूप देने के लिए प्रयत्न करता हूँ। यह कह कर मोहन ने वहां से विदा ली।

प्रथम दिन

ईश्वर एक : नाम अनेक

आज वसन्त पंचमी है। प्रकृति माता का उल्लास बिखरा पड़ रहा है। आज का प्रभात चन्दनपुर में तो और भी एक नया उत्साह लेकर आया है। गाँव के मुखिया चौधरी चन्दनसिंह की चौपाल लिपीपुती कितनी सुन्दर लग रही है। तोरणों से उसे सजाया जा रहा है। गांव के सभी तरुण वासन्ती परिधान पहने प्रसन्न बदन,श्रद्धा और कौतूहल से चौपाल की ओर चले आ रहे हैं।

ठीक समय पर ईश-प्रार्थना के पश्चात् सत्यपाल ने कहना प्रारम्भ कियाः

ईश्वर एक है अनेक नहीं

प्रिय साथियों ! 'सत्यार्थ प्रकाश' जिसकी पावन कथा से हम सभी लाभान्वित होने के लिए एकत्रित हुए हैं, महर्षि दयानन्द की अमर कृति है। इसके प्रथम समुल्लास में यह बताया गया है कि ईश्वर की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का साध्य या चरम लक्ष्य है। वह ईश्वर एक है, अनेक नहीं। हाँ, ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव इतने अधिक हैं कि हम उनके आधार पर उसे अनेक नामों से पुकारते हैं पर वास्तव में वे सब नाम एक ही परमेश्वर के हैं।

प्यारे मित्रो! हम जानते हैं कि एक ही व्यक्ति के कई नाम गुण कर्म, स्वभाव, सम्बन्ध और पदानुसार हो जाते हैं। जैसे एक ही व्यक्ति सम्बन्धानुसार पिताजी, चाचाजी, ताऊजी, मामाजी, नानाजी आदि कई सम्बोधनों से सम्बोधित होता है और वही व्यक्ति पेशे के अनुसार वकील, डाक्टर, अध्यापक, लालाजी आदि सम्बोधनों से सम्बोधित होता है, लेकिन उसका मुख्य नाम एक ही होता है, ठीक उसी प्रकार संसार की रचना करने वाला होने से उसी ईश्वर को 'ब्रह्मा' सब में व्यापक होने और सबकी पालना करने वाला होने से उसी को 'विष्णु' सबका कल्याण करने वाला होने से उसी को शिव, पापियों को दण्ड देने वाला या रुलाने वाला होने से उसी को 'रुद्र' और माता-पितादि देवों का भी देव होने से उसी को 'महादेव' कहते हैं। पर हम भूलें नहीं कि विभिन्न नामों से पुकारे जाने पर भी ईश्वर का मुख्य और निज नाम **ओ३म्** है। इसी सच्चाई को समझाने के लिए पवित्र वेद में कहा गया है- **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** अर्थात् **उस एक ही परमात्मा 'ओ३म्' को विद्वज्जन प्रकरण और गुण-कर्म स्वभाव के अनुसार अनेक नामों से पुकारते हैं।**

परमात्मा का मुख्य और निज नाम 'ओ३म्'

ओ३म् यह शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। यह शब्द 'अ','उ','म्' से मिलकर बना है। इस एक नाम में परमेश्वर के बहुत से नाम आते हैं। 'अ' से विराट् अग्नि,विश्व,आदि 'उ' से

हिरण्यगर्भ वायु, तैजस आदि तथा 'म्' से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि। वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट वर्णित है कि प्रकरणानुसार ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

परमात्मा के नामों की संख्या

प्यारे भाइयो। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में स्वामी जी ने परमात्मा के १०० नाम लिखे हैं। परन्तु उन नामों से भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं। **क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं।** परमात्मा के प्रत्येक गुण कर्म स्वभाव की दृष्टि से उसका एक एक नाम है। इस प्रकार परमात्मा के १०० नाम जो महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में व्याख्यायित किए हैं वे महर्षि जी के ही कथनानुसार समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं।

प्रकरणानुसार नामों का ग्रहण

यहाँ यह विचारणीय है कि 'ओ३म्' तो केवल परमात्मा ही का नाम है और 'अग्नि' आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण देखना चाहिए। प्रकरण का अभिप्राय है-जैसे किसी ने किसी से कहा कि हे भृत्य! तू सैन्धव ले आ। तब उसको प्रकरण अर्थात् अवसर का विचार करना चाहिए। क्योंकि 'सैन्धव' नाम दो पदार्थों का है, घोड़े का और लवण का। जो स्वामी का समय गमन-का हो तो घोड़ा,और भोजन-काल हो तो लवण लाना उचित है। गमन-समय में लवण और भोजन-समय में घोड़ा ले आवे तो उसका स्वामी उस पर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू मूर्ख पुरुष है,गमन समय में लवण और भोजन-समय में घोड़े के लाने का क्या प्रयोजन था? तू प्रकरण विद् नहीं है। नही ंतो जिस समय जिसे लाना चाहिए था उसे ही लाता। इससे सिद्ध हुआ कि जहां जो अर्थ ग्रहण करना उचित हो वहां उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिए। इसे ही प्रकरण कहते हैं। इस प्रकार जहां-जहां अग्नि आदि के साथ स्तुति, प्रार्थना उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण हों वहाँ वहाँ परमात्मा का, और जहां जहां इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहाँ वहाँ जीव का अर्थ लेना चाहिए।

ईश्वर के नाम सार्थक हैं

साथियों ! जैसे कि लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम अनर्थक होते हैं, वैसे ईश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा के नाम कहीं उसके गुण, कहीं कर्म और कहीं स्वभावरूपी अर्थों के वाचक हैं। अतः ओ३म् आदि नाम सब सार्थक हैं। जैसे स्वप्रकाश होने से अग्नि, विज्ञानस्वरूप होने से मन,सबका पालन करने और परमैश्वर्यवान् होने से इन्द्र, सबका जीवन-मूल होने से प्राण, और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम ब्रह्मा है। सबसे बलवान्

होने से वायु,अनन्त ऐश्वर्य वाला होने से ईश्वर, सबसे प्रीति किया जाने योग्य होने से मित्र,सबसे श्रेष्ठ और वरणीय होने से वरुण, न्यायकारी होने से अर्यमा, बड़ों से बड़ा होने से बृहस्पति, सब जीवों का अन्तर्यामी होने से परमात्मा, सब जीवों में व्यापक होने से नारायण, सब प्राणियों के कर्मफल का व्यवस्थापक होने से यम,समग्र ऐश्वर्य से युक्त और भजने योग्य होने से भगवान्,उत्पत्ति और प्रलय से बचा होने से शेष,कल्याण और सुख का करने वाला होने से शंकर है। अतः ऐसे परमेश्वर की हमें प्राप्ति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए। **उसकी प्राप्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।**

प्यारे भाइयो! आज का समय पूरा हुआ चाहता है अतः आज की कथा को यहीं विराम देते हैं। हमने आज की कथा में ऋषि दयानन्द की अमर कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास के आधार पर ईश्वर के एकत्व और उसके मुख्य नाम 'ओ३म्' का विवेचन आपके समक्ष रखा है। **आशा है एक ही ईश्वर के नाम पर चल रहे 'बहुदेवतावाद' और उससे उत्पन्न मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव, कलह-क्लेश एवं पाखण्डों से अपने को बचाकर आप सभी एक ईश्वर की उपासना और एक मात्र 'ओ३म्' के जप को अपनायेंगे।** मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम एवं योगेश्वर श्री कृष्ण और ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त सभी ऋषि मुनि एक मात्र 'ओ३म्' का ही जप करते रहे हैं। यहां इस प्रकरण में आप सभी यह भी जानिये कि किसी भी ग्रन्थ के आरम्भ में 'ओ३म्' या 'अथ' का ही प्रयोग करना चाहिए,अन्य किसी का नहीं। यही सनातन ऋषि-मुनियों की रीति रही है।

वैदिक 'एकेश्वरवाद' के इस सरल विवेचन को सुनकर मोहन तथा अन्य श्रोताओं को एक नई दृष्टि मिली। मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवालों को ढहाकर किस प्रकार प्रभु की प्यारी सम्पूर्ण मानव प्रजा सुखी हो सकती है,इसकी राह मिली। इस पुण्यमयी कथा के लिए सभी ने सत्यपाल का हार्दिक धन्यवाद किया।

दूसरा दिन

बाल-शिक्षा

शाम के पांच बजने को हैं। कल की भांति आज भी इस अमृतमयी कथा को सुनने के लिए सभी नौजवान साथियों के अतिरिक्त अन्य अनेकों बाल-वृद्ध मुखिया जी की चौपाल पर एकत्रित हो गये हैं। आज स्त्रियां भी बड़ी संख्या में इस कथा को सुनने के लिए आयी हैं। ठीक समय पर सत्यपाल भी आकर अपना स्थान ग्रहण कर चुके हैं। जब सभी आगन्तुक अपना अपना स्थान ले चुके तब ईश्वर प्रार्थना के पश्चात् मोहन के साग्रह निवेदन पर 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वितीय समुल्लास को लेकर सत्यपाल ने कथा इस प्रकार प्रारम्भ की।

मित्रों व माताओ! आपको याद होगा, कल की कथा में हमने बताया था कि ईश्वर की प्राप्ति ही इस अमूल्य मानव जीवन का उद्देश्य है परन्तु ईश्वर की प्राप्ति से पहले उसका परिचय आवश्यक है। ईश्वर के परिचय के अभाव में, उसे बिना जाने ही मानने का दुष्फल है एक ईश्वर के स्थान पर, उसके अनेक नामों के आधार पर अलग अलग सैकड़ों ईश्वरों की कल्पना, अलग अलग सैकड़ों धर्मग्रन्थों, गुरुमन्त्रों, सम्प्रदायों, अखाड़ों, तिलकों और मिथ्या आडम्बरों की कल्पना,जिससे प्रभु की श्रेष्ठतम मानव प्रजा पशु से भी गिरकर घोर नारकीय (दुःखमय) जीवन जी रही है। अतः सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास के आधार पर कल हमने संक्षेप से विचार किया था कि किस प्रकार **ब्रह्मा,विष्णु,महेशादि उस एक ईश्वर के ही असंख्य नाम हैं, जिसका मुख्य और निज नाम 'ओ३म्' है।**

मान्या माताओं और बन्धुओं! ईश्वर के इस आरम्भिक परिचय के साथ ही,ईश्वर के स्वरूप,उसकी भक्ति के स्वरूप और उसके प्रति मनुष्य के कर्तव्यों का परिचय भी आवश्यक है। पर उससे भी पहले यह आवश्यक है कि मनुष्य स्वयं अपने को जाने अर्थात् अपने प्रति कर्तव्य को पहचाने और अपने की परिभाषा में अपने परिवार पड़ौस, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व को मानकर शब्द के सही अर्थों में 'मनुष्य' बने।

मनुष्य 'मनुष्य' बने यही आज के युग का (किसी भी युग की भांति) सबसे बड़ा और ज्वलन्त प्रश्न है। मानव निर्माण के बिना राष्ट्र निर्माण और विश्व शान्ति की सारी योजनायें निष्फल रही हैं, और रहेंगी, फिर ईश्वर प्राप्ति तो एक स्वप्न ही होगा। इसलिये युगदृष्टा क्रान्तिदूत आचार्य दयानन्द ने ईश्वर प्राप्ति के अन्य साधनों और स्वरूप को सातवें समुल्लास में विचार करने के पहले सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास तक मानव निर्माण के विविधि अंगों-सोलह संस्कारों,पंच महायज्ञों, चार वर्ण और चार आश्रमों तथा राजधर्म (राष्ट्र धर्म) पर क्रम से विचार किया है।

बाल्यावस्था मानव जीवन के भवन की नींव है। जन्म से भी पहले बालक का निर्माण माता के गर्भ में आने के समय से ही और सच पूछा जाय तो उसकी तैयारी के रूप में उससे भी पहले आरम्भ हो जाता है। गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कारों का इसलिए बड़ा भारी महत्व है। मानव निर्माण के महायज्ञ की सफलता में माता-पिता और आचार्य के महत्व को बताते हुए महर्षि दयानन्द ने द्वितीय समुल्लास का आरम्भ 'मातृमान्' पितृमान् आचार्यवान् पुरुषों वेद' शतपथ ब्राह्मण के इस वचन से किया है।

सत्संग प्रेमी माताओं और बन्धुओं! निस्संदेह बालकों की शिक्षा-माता-पिता एवं गुरु का आवश्यक कर्तव्य है। बालक की शिक्षा दीक्षा का प्रारम्भ तो गर्भाधान संस्कार से ही होता है।शास्त्र विधि से गर्भाधान तथा उसके पश्चात् गर्भस्थ बालक के स्वास्थ्य तथा गर्भिणी की शारीरिक स्थिति का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। जातकर्म संस्कार के समय उन सभी बातों का ध्यान रखना जरूरी है जो स्वास्थ्य रक्षा एवं आयुर्वेद की दृष्टि से महत्वपूर्ण हों। इसलिए जातकर्म संस्कार में बालक के आरोग्य के लिए ही घी और मधु को उचित मात्रा में मिलाकर सोने की सलाई से चटाने का निर्देश किया है।

बालक जब बोलना सीखता है तो माता ही उसकी प्रथम गुरु होती है। वह उसे स्पष्ट उच्चारण की शिक्षा देती है। तत्पश्चात् बालक को आचार-व्यवहार,भोजन,शयन तथा अन्य नित्य प्रति के कर्तव्य पालन की समुचित शिक्षा, नीति के दोहे, संस्कृत के श्लोक, मन्त्र, कविता, कहानी और छोटे-छोटे दृष्टान्तों एवं ऐतिहासिक वृत्तों द्वारा दी जानी चाहिए।

माता का कर्तव्य

माताओं को चाहिए कि वे बालकों को सदा उत्तम शिक्षा प्रदान करें, जिससे बालक सुसभ्य बनें तथा किसी भी अंग से कुचेष्टा न कर पावें। जब बालक बोलने का उपाय करें, वर्णों का उच्चारण यथोचित रूप से उचित स्थान और प्रयत्न के अनुसार करायें तथा ह्रस्व, दीर्घादि ठीक ठीक प्रकार से बोलना सिखायें।

जब वह कुछ बोलने लगे तब सुन्दर वचन और बड़े-छोटे मान्य, माता, पिता, राजा, विद्वान् आदि के भाषण, और उनके पास उठने-बैठने आदि की शिक्षा दें।

पिता का कर्त्तव्य

जब बालक या बालिका पांच वर्ष के हो जावें, तब पिता को चाहिए कि वे उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावे, अन्य देशी भाषाओं की अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वरादि का ज्ञान एवं किससे कैसा वर्तना आदि बातों का ज्ञान मिल सके, उन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें।

जन्म से पांचवे वर्ष तक बालकों को माता, छठे से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा प्रदान करे। नववें वर्ष के आरम्भ में द्विज (ब्राह्मणादि) अपने सन्तानों का उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) करके आचार्य कुल में भेज दें, जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री विद्यादान करने वाली हों। अपढ़ (शूद्र) लोग अपनी सन्तानों को सीधा ही गुरुकुल भेज दें (क्योंकि वे स्वयं तो मार्गदर्शन में असमर्थ होते हैं)। बालक की शिक्षा में माता-पिता को आवश्यकतानुसार ताड़ना का भी उपयोग करना चाहिए।

आचार्य का कर्त्तव्य

माता-पिता ने धर्म, विद्या और सदाचार आदि के जो श्लोक अथवा 'निरुक्त' 'अष्टाध्यायी' के सूत्र या वेद मंत्र आदि कण्ठस्थ कराए हों, गुरु भी उनका पुनः अर्थ विद्यार्थियों को कण्ठस्थ करावे।

जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो,उसी प्रकार का भोजन और व्यवहार आचार्य स्वयं करे और विद्यार्थियों को भी करावे। गुरुजनों को मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहना चाहिये।

आर्य मर्यादा के संस्थापक ऋषियों ने अपने में पाये जाने वाले सुचरितों का ही अनुकरण करने का उपदेश दिया था **यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि'** यदि गुरु एवं आचार्य में भी कोई दुश्चरित्रता की बात पाई जाये तो शिष्य के लिए वह त्याज्य ही है।

'भूत प्रेत' का अन्धविश्वास

भारत में मध्यकालीन अन्धविश्वासों एवं मूढ़ धारणाओं के शिकार व्यक्ति बच्चों के समक्ष काल्पनिक भूत, प्रेत, पिशाच,डाकिनी आदि की अनावश्यक चर्चा तथा कपोल कल्पित बातों का वर्णन कर उनके बाल सुलभ हृदय में मिथ्या भय के संस्कार पैदा कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि बड़े होने पर भी उनके हृदय में भय की भावना प्रबल रूप में छाई रहती है। ऐसे लोग पुरुषार्थहीन, अन्धविश्वासी एवं मूढ़ ही बने रहते हैं। वस्तुतः शास्त्रों में 'प्रेत' शब्द का प्रयोग मृतक शरीर के लिए हुआ है। **मरने के पश्चात् जीव परमात्मा की व्यवस्था के अन्तर्गत अपने कर्मफलभोग के अनुसार दूसरी योनि धारण कर लेता है। अतः उसके भूत,प्रेत आदि की कल्पित योनियों में प्रवेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता।** वास्तव में भारत में भूत, प्रेतों की काल्पनिक सत्ता को लेकर अनेक पाखण्ड, अनाचार, दुराचार एवं ढोंग प्रचलित हैं। इनसे बहुसंख्यक अनपढ़ एवं अशिक्षित व्यक्तियों को अनेक प्रकार की हानि उठानी पड़ती है। आश्चर्य तो यह है कि कभी-कभी पठित लोग भी इन अन्धविश्वासों के शिकार हो जाते हैं। माताओं और मित्रो! महर्षि ने कितने प्रबल शब्दों में इस अन्धविश्वास का खण्डन किया है। वे लिखते हैं-

'मृतक शरीर का नाम 'प्रेत' है। जब उस शरीर का दाह हो चुका तब उसका नाम 'भूत' होता है अर्थात् वह अमुक नाम का पुरुष था जो कि अब नहीं है। जितने उत्पन्न हो वर्तमान में आकर न रहे वे भूतस्थ हैं,इससे उनका नाम'भूत' है। ऐसा ब्रह्मा से लेकर आज तक के विद्वानों का सिद्धान्त है। परन्तु जिसको शंका, कुसंग और कुसंस्कार होता है उसको भय और शंकारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं। देखो जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख-दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या उस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था कोई भी नाश कर सकता है? **अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थ-विद्या के पढ़ने और विचार से रहित होकर सन्निपात,ज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं।**

इस प्रकार इन भूत-प्रेतादि की कोई सत्ता नहीं है। अतः आदर्श माता-पिता को ऐसे मिथ्या भय के कुसंस्कारों से अपनी सन्तान की रक्षा करनी चाहिए।

ज्योतिष शास्त्र के नाम पर ठगी

भूत, प्रेत जन्य अन्धविश्वास की ही भांति फलित ज्योतिष का अन्धविश्वास भी भारत की बहुसंख्यक जनता को पीड़ित कर रहा है। ज्योतिष के नाम पर जन्म पत्र, फलादेश, भविष्य कथन, शकुन विचार आदि के विविध पाखण्ड प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं:-

'ज्योतिष शास्त्र में जो अंक, बीज तथा रेखागणित आदि विद्या हैं(वह) सच्ची और जो फल की हैं वह सब झूठ है, देखो! जैसे पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक भी जड़ हैं वे ताप और प्रकाशादि के देने से भिन्न

कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होकर दुःख और शान्त होकर सुख दे सकें? संसार में जो राजा और प्रजा सुखी-दुखी हो रहे हैं, यह ग्रहों का फल नहीं है, ये सब पाप पुण्य के फल हैं।

इस प्रकार ज्योतिष के वैज्ञानिक रूप की उपेक्षा कर भविष्य कथन के नाम पर ज्योतिर्विदाभास व्यक्तियों ने पाखण्ड का सृजन किया है। तन्त्र, मंत्र, गण्डा, ताबीज को लेकर भी हमारे देश में जो पाखण्ड व्याप्त हैं, वे साधारण जन समाज को मूढ़ता के गर्त में ही ले जाते हैं। इसी प्रकार मारण,मोहन,उच्चाटन,वशीकरण आदि की तांत्रिक विधियां मूढ़ जनों के घृणोत्पादक आचार हैं, शिष्ट जन समाज इन अन्धविश्वासों से दूर ही रहता आया है।

शरीर रक्षा की शिक्षा

बाल्यकाल से ही बच्चों को शरीर रक्षा, वीर्य रक्षा तथा ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जानी चाहिये। यदि माता-पिता प्रारम्भ से ही बालकों में उत्तम संस्कार प्रविष्ठ कराने के लिए दृढ़ संकल्पी रहें तो उनका शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास सर्वोत्तम रीति से हो सकेगा। माता ही बालक की प्रथम शिक्षक होती है। पिता और गुरु तो माता के पश्चात् ही बालकों को शिक्षा देने में समर्थ होते हैं। अत्यधिक लाड़ प्यार से भी बच्चों के बिगड़ने और पथ-भ्रष्ट होने की सम्भावना रहती है। बच्चों को अनुशासन में रखने और नियमादि का पालन कराने में कड़ाई तथा दृढ़ता बरतनी चाहिए।

शिष्टाचार का ज्ञान

शिष्टाचार का ज्ञान बालकों को शिष्ट,सभ्य एवं श्रेष्ठ व्यवहार का अभ्यासी बनाता है। बड़ों का सम्मान तथा अभिवादन करना भी बालक को सिखलाना चाहिए। अभिवादन का सर्वश्रेष्ठ प्रकार 'नमस्ते' है,जिसे वेद तथा अन्य शास्त्र स्मृति, काव्य पुराण आदि ग्रन्थों में सर्वत्र स्वीकार किया गया है। उसके स्थान पर किसी भी देवता या महापुरुष की जय का उच्चारण अथवा 'नमस्कार' जैसे क्रिया परक शब्दों का उच्चारण निरर्थक ही है। बालकों को सुन्दर, सरल, सार्थक तथा नैतिक शिक्षा प्रदायक सुभाषितों का स्मरण करना चाहिए। इस प्रकार वे शिष्टाचार और सदाचार की शिक्षा बचपन से ही ग्रहण कर सकें,माता-पिता और आचार्य को भी इसका ध्यान रखना चाहिए।

श्रद्धामयी माताओं,बुजुर्गों और साथियों! आज के अपने कथन को यहीं विराम देते हैं। आज हमने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास के सार-संक्षेप को आपके समक्ष रखते हुए बताने का यत्न किया है कि अभिभावक एवं आचार्य वृन्द बालक के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह किस प्रकार करें ताकि उनका भविष्य उज्ज्वल बन सके। आशा है आप लोग अपने बालकों के प्रति जागरूक रह कर स्व कर्तव्य का सुन्दरता से पालन करेंगे। अब 'बालकों' के अध्ययन-अध्यापन एवं शास्त्र शिक्षण की विधि किस प्रकार की हो इस विषयक् चर्चा कल की कथा में करेंगे। इत्योम् शम्।

शान्तिपाठ के पश्चात् कथा की समाप्ति पर सभी ग्रामवासी सत्यार्थ प्रकाश के इस सुन्दर उपदेश की प्रशंसा करते हुए अपने अपने घरों को वापिस चल दिये।

तीसरा दिन

अध्ययन अध्यापन विधि

समय वहीं सायंकाल। आज मुखिया जी की चौपाल खचाखच भरी हुई है। सभी श्रोता कथा को सुनने को समुत्सुक हैं। सत्यपाल भी अपना स्थान ग्रहण कर चुके हैं। धीरे-धीरे कुछ और श्रोता चले आ रहे हैं, इधर ठीक समय पर सत्यपाल जी ने ईश-प्रार्थना के पश्चात् कथा को आरम्भ किया-

प्यारे साथियों, गुरुजनों और माताओ! कल की कथा में मैंने यह बताने का यत्न किया कि बालक की प्रारम्भिक शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए। आज की कथा में सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास के आधार पर यह समझाने का यत्न रहेगा कि गुरुकुलीय शिक्षा में बालकों के अध्ययन और अध्यापकों के अध्यापन की विधि किस प्रकार की होनी चाहिए।

प्यारे मित्रों और माताओं! आप सभी जानते हैं कि सन्तानों को उत्तम विद्या,शिक्षा तथा उत्तम गुण,कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना,माता,पिता,आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्तव्य है। सोना, चांदी, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं होता। वरन् आभूषणों के धारण करने से तो देहाभिमान और विषयासक्ति होती है तथा उससे चोर आदि के भय तथा उनके द्वारा हत्या तक की सम्भावना रहती है। अतः आरम्भ से ही सद्गुणों के आभूषण बालकों को धारण कराने चाहिए।

गुरुकुलीय शिक्षा

बालक-बालिकायें जब आठ वर्ष के हों तभी बालकों को बालकों की व बालिकाओं को बालिकाओं की, पाठशाला में पढ़ने भेज देना चाहिए। जो अध्यापक पुरुष या स्त्री दुराचारी हों, उनसे शिक्षा कभी न दिलानी चाहिए। **जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक मनुष्य हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने के योग्य हैं।** सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि को अपने घरों में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके अपनी-अपनी पाठशालाओं में भेज देना चाहिए। विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए। लड़के-लड़कियों की पाठशालायें एक दूसरे से दो कोस दूर होनी चाहिए । अध्यापिका और अध्यापक तथा नौकर-चाकर बालकों की पाठशाला में पुरुष एवं बालिकाओं की पाठशाला में स्त्री ही होनी चाहिए।

जब तक वे पढ़ें तब तक उन्हें ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी रहना चाहिए, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर आदि से युक्त होकर आनन्द को नित्य बढ़ा सकें। शिक्षालय (गुरुकुल) में सबको समान वस्त्र, खानपान, आसन दिये जाने चाहिए, अर्थात् समानता का व्यवहार किया जाना चाहिये।

शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य हो

साथ ही राज नियम और जाति नियम इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कोई भी पांचवे या आठवें वर्ष से आगे अपने बालक-बालिकाओं को अपने घर में न रख सकें अर्थात् सभी बालक-बालिकाओं को अनिवार्य रूप से अपने-अपने विद्यालयों में शिक्षा के लिए भेज दिया जाना चाहिये। जो कोई राजाज्ञा को न माने,उन सभी को राज्य की ओर से दण्डित किया जाना चाहिए।

गुरुमन्त्र गायत्री को कंठस्थ करायें

प्रारम्भ से बालक-बालिकाओं को गुरुमन्त्र-गायत्री का अर्थ सहित अभ्यास कराना चाहिए। गायत्री में परम पिता सविता से मनुष्य अपनी बुद्धियों को पवित्र. करने तथा इन्हें शुभ कर्मों में प्रेरित करने की प्रार्थना करता है। संसार के धार्मिक साहित्य में गायत्री के समान उदात्त भावना युक्त अन्य कोई मन्त्र नहीं है।

यज्ञोपवीत संस्कार

ब्राह्मण का १६ वर्ष तक, क्षत्रिय का २२ वर्ष तक, वैश्य का २४ वर्ष तक सावित्री काल (यज्ञोपवीत संस्कार का समय) उल्लंघित नहीं होता- अर्थात् अधिकतम इतनी आयु तक उपनयन किया जा सकता है या कर देना चाहिए।[१]

क्या स्त्री और शूद्र वेद पढ़ सकते हैं?

वेद पठन-पाठन,अध्ययन-अध्यापन,श्रवण,मनन,चिन्तन का अधिकार मनुष्य मात्र को है। मध्यकाल के अन्धकार पूर्ण दिनों में वेदों के पठन का अधिकार ब्राह्मण या अधिक से अधिक द्विज मात्र तक सीमित कर दिया गया था। स्वामी दयानन्द ने अपनी अपार करुणामयी दृष्टि से स्त्री, शूद्र सभी के लिए वेदाधिकार का निरूपण किया। 'यथेमां वाचं कल्याणी.' इस यजुर्मन्त्र के आधार पर महर्षि ने यह घोषणा की कि वेद परमात्मा की कल्याण वाणी है जिसे पढ़ने पढ़ाने,सुनने-सुनाने का मनुष्य मात्र को अधिकार है। पुराकाल में गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा आदि ब्रह्मवादिनी नारियों ने वेद विद्या का सांगोपांग अध्ययन किया था। अतः पौराणिकों के इस कथन में कुछ भी सार नहीं है कि स्त्री जाति को वेद के अध्ययन से वंचित रखना चाहिए। समय था जब ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करने के पश्चात् ही कन्यायें विवाह करती थीं।

---

(१) ब्राह्मण के १६, क्षत्रिय के २२ और वैश्य के २४ (वर्ष की आयु) से पूर्व यज्ञोपवीत होना चाहिए।(सं.वि.)

ब्रह्मचारी के कर्तव्य

सन्ध्योपासना(ब्रह्मयज्ञ)

प्यारे साथियो और माताओं! स्वामी जी ने ब्रह्मचारियों के लिए पंच महायज्ञों में से दो यज्ञों का विधान विशेष रूप से किया है(१) ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्योपासना) (२) देवयज्ञ(अग्निहोत्र)

सन्ध्या विवेक

'सन्ध्या'शब्द 'सन्धि'शब्द से बना है। सन्धि का अर्थ है-मेल। रात्रि और दिन के मिलन समय या सन्धि बेला में आत्मा और परमात्मा के मिलन का नाम 'सन्ध्या' है। आत्मा से परमात्मा की महिमा और गुणों का ध्यान करते हुए उसके गुणों को अपने जीवन में धारण करने की सच्चे मन से प्रार्थना करना ही 'सन्ध्या' है। प्रार्थना के अनुसार ही अपने को बनाना ईश्वर की उपासना है। सन्ध्या के १६ मन्त्रों में ईश्वर स्तुति-प्रार्थना-उपासना की इसी प्रक्रिया को हमारे ऋषियों ने बड़ी उत्तमता से संजोया है। **इसलिये हर एक ब्रह्मचारी को प्रातः और सायं दोनों समय नियमपूर्वक सन्ध्या करके अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की उन्नति करनी चाहिए।'**[२]

सन्ध्या और प्राणायाम विधि

प्राणायाम शरीर, मन और आत्मा को स्वस्थ,बलवान एवं दृढ़ संकल्प बनाये रखने में सहायक होता है। मनु के अनुसार जैसे अग्नि में तपाने से स्वर्णादि धातुओं का मल नष्ट होता है तथा वे शुद्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर होते हैं। प्राणायाम के विभिन्न भेद योगशास्त्र में वर्णित हैं, जिनका अभ्यास योग्य गुरु की देख रेख में किया जाना चाहिए।

देव यज्ञ(अग्निहोत्र)

मेरे मित्रो और माताओं,ब्रह्मचारियों को प्रतिदिन अग्निहोत्र करना चाहिए। 'महर्षि दयानन्द पंचमहायज्ञविधि में अग्निहोत्र शब्द का अर्थ इस प्रकार करते हैंः-

'अग्नि वा परमेश्वर के लिए जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञा का पालन करने के अर्थ, होत्र जो हवन अर्थात् दान करते हैं, इसे अग्निहोत्र कहते हैं।

अग्निहोत्र का समय

सन्ध्योपासना की भांति ही अग्निहोत्र भी प्रातः और सायं की सन्धि बेलाओं में करना चाहिए। प्रातः का यज्ञ सन्ध्या के बाद में और सायंकाल का यज्ञ संध्या से पहले करना चाहिए।

---

(२) दैनिक सन्ध्या और अग्निहोत्र, ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त गृहस्थियों एवं वनस्थों का भी परमावश्यक कर्तव्य है।

अग्निहोत्र से लाभ

धर्म प्रेमी बन्धुओं और माताओं! स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास और पंचमहायज्ञ विधि आदि में 'अग्निहोत्र' के लाभों के विषय में बताया है कि-

सुगन्धित, पौष्टिक, मिष्ट ओर रोग नाशक औषधियों से-होम करने से पवन और वर्षा-जल की शुद्धि होती है। शुद्ध पवन और शुद्ध जल के योग से पृथ्वी के सब पदार्थों की अत्यन्त उपयोगिता बढ़ जाती है। उसमें सब जीवों को परम सुख होता है। इस कारण इस अग्निहोत्र करने से अत्यन्त सुख का लाभ होता है तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है।

इसके अतिरिक्त यज्ञ में वेद मन्त्रों का पाठ करने से जहां वेद की रक्षा होती है, वहां उन मन्त्रों के अनुसार जीवन बनाने से मनुष्य देव (दिव्य मानव) बनकर उस महादेव (परमात्मा) को प्राप्त करता है।

ब्रह्मचारी के लिए पालनीय नियम

योग दर्शन में वर्णित यम-सत्य, अहिंसा अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह तथा नियम-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान का श्रद्धा पूर्वक सेवन ब्रह्मचारी के लिये जहां आवश्यक है वहां मनु महाराज द्वारा बताई गई धार्मिक मर्यादाओं का पालन भी अभीष्ट है।

धर्माधर्म के लक्षण

प्यारे मित्रों और माताओं ! महर्षि ने 'धर्माधर्म' के लक्षण मनुस्मृति के आधार पर इस प्रकार लिखे हैंः-

वेदः स्मृतिःसदाचारःस्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुःसाक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् । मनु.२।१२

वेद, स्मृति, वेदानुकूल आप्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है जैसा कि सत्य भाषण आदि, ये चार धर्म के (साक्षात्) लक्षण कहे गये हैं अर्थात् इन्हीं से धर्माधर्म का निश्चय होता है।

धर्मात्मा और धर्म की कसौटी*

धर्मात्मा कौन हो सकता है और धर्म की अन्तिम कसौटी क्या है ? इस विषय में मनुस्मृति का प्रमाण देते हुए महर्षि ने बताया है-

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः । मनु २।१३।।

जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषय में फंसा हुआ नहीं होता उसी को धर्म का ज्ञान होता है। (अर्थात् वही सच्चा धर्मात्मा है) और जो धर्म को जानने की इच्छा करें उनके लिए वेद ही परम प्रमाण (अन्तिम कसौटी) हैं।

***धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या संत्यमक्रोधो दशकं धर्मं लक्षणम्।।मनु.।।६/९२**

धैर्य, क्षमा, अधर्म में मन को प्रवृत्त न होने देना, चोरी-त्याग, भीतर-बाहर की पवित्रता, इन्द्रियों को धर्म में चलाना, बुद्धि-वृद्धि, यथार्थ ज्ञान, सत्य, अक्रोध - महर्षि मनु के अनुसार ये धर्म के दश लक्षण हैं।

पाठ्य विधि

सत्संग प्रेमी बन्धुओं और माताओं ! महर्षि दयानन्द ने इस समुल्लास में ब्रह्मचारियों के लिए पाठ्य विधि इस प्रकार निर्धारित की है-

पहले तीन वर्षों में- वर्णोच्चारण के साथ-साथ सम्पूर्ण अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ावें। अगले दो वर्षों में- निघण्टु, निरुक्त, महर्षि पिंगल कृत 'छन्दोशास्त्र' मनुस्मृति व वाल्मीकि रामायण और महाभारत आदि पढ़ायें। अगले दो वर्षों में-सभी उपनिषद् एवं दर्शन पढ़ायें। अगले छः वर्षों में- चारों ब्राह्मण (ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ) तथा चारों वेद (ऋग्, यजु, साम और अथर्व) स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध और क्रिया सहित पढ़ाने चाहिये। अगले आठ वर्षों में चरक, सुश्रुत आदि, ऋषि प्रणीत वैद्यकशास्त्र, राजनीति, सैन्य विज्ञान, गान विद्या (आर्ष ग्रन्थानुसार), शिल्प विद्या (नानाविध पदार्थों के निर्माण की कला), ज्योतिषशास्त्र (अंकगणित, बीज-गणित, भूगोल और भूगर्भ विद्या)सिखाने चाहिए।

इस प्रकार उक्त रीति से जितनी विद्या २१ वर्षों में आ सकती है, उतनी अन्य प्रकार से सौ वर्षों में भी नहीं आ सकती।

केवल ऋषि प्रणीत ग्रन्थ ही पढ़ें।

यहां यह भी विचारणीय है कि केवल ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को ही पढ़ना चाहिए क्योंकि वे बड़े विद्वान् शास्त्रविद् और धर्मात्मा थे। जो ग्रन्थ ऋषि प्रणीत नहीं हैं,उनमें कर्ता की अल्पज्ञता के कारण पक्षपात एवं अल्पज्ञता भरी होती है। इसी से व्याकरण, छन्द शास्त्र आदि ग्रन्थों में केवल ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को ही चुनकर पढ़ें। इसके साथ ही यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य का पालन करें। ब्रह्म का अर्थ है- ईश्वर, वेद और वीर्य। अगाध ईश्वर निष्ठा (भक्ति), वेद स्वाध्याय और सरलता सादगी एवं तपस्या पूर्वक वीर्य रक्षण ब्रह्मचारी का सबसे बड़ा कर्तव्य है।

सत्संग प्रेमी बन्धुओं और माताओं! आज की कथा में मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास के आधार पर यह बताने का प्रयास किया कि बालकों के शिक्षण का क्रम किस प्रकार होना चाहिए, जिससे मनुष्य के विकास की नींव सुदृढ़ हो। कल की कथा में बालक के समावर्तन संस्कार, गृहस्थाश्रम एवं उसके कर्तव्यों के विषय में विचार विमर्श करेंगे। आज की कथा को यहीं विराम देते हैं। शान्ति पाठ के पश्चात् आज की सभा विसर्जित की गई। सभी श्रोता एक नये प्रकाश का अनुभव कर रहे थे। उनका मन और मस्तिष्क मान रहा था कि गुरुकुलीय शिक्षा और ऋषि दयानन्द द्वारा एक महान् शिक्षा शास्त्री के रूप में बताये गये विद्यार्थी जीवन के ये दिव्य सूत्र ही मनुष्य को 'मनुष्य' बनाकर राष्ट्र और विश्व का कल्याण कर सकते हैं।

चौथा दिन

समावर्तन, विवाह और गृहस्थी

सदैव की भांति आज भी चन्दनपुर के मुखिया चन्दनसिंह की चौपाल पर सत्संग प्रेमी बड़ी संख्या में उपस्थित हैं। सामूहिक सन्ध्या और यज्ञ के पश्चात् सत्यपाल ने कहना प्रारम्भ किया-आदर के योग्य गुरुजनों,माताओं और साथियो! जैसा कि मैंने कल निवेदन किया था कि आज की कथा में सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास के प्रकाश में मनुष्य जीवन की सफलता के आधार गृहस्थाश्रम की महिमा और उसके कर्तव्यों पर प्रकाश डाला जायेगा-आशा है आप सभी पूर्ण मनोयोग से इन पवित्र विचारों को श्रवण करेंगे।

समावर्तन संस्कार

मित्रो और माताओ ! सत्यार्थ प्रकाश का चौथा समुल्लास गृहस्थ धर्म का विधान करता है। वेदाध्ययन के समाप्त होने पर व्यक्ति गृहस्थ में प्रवेश करता है। इस प्रकार के प्रवेश को समावर्तन कहते हैं। विवाह संस्कार गृहस्थाश्रम का प्रवेश द्वार है।

विवाह और गोत्र

विवाह किन-किन गोत्रों में करना चाहिए और किन में नहीं-इस संबंध में महर्षि लिखते हैं-

'जो कन्या माता-पिता के कुल की छह पीढ़ियों में न हो, पिता के गोत्र की न हो,उससे ही विवाह करना उचित है। कन्या को 'दुहिता' इसीलिए कहा जाता है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है, निकट करने में नहीं। जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख तथा भयंकर रोगों से पीड़ित हों, उन कुलों की कन्या या वर के साथ विवाह न होना चाहिए।

विवाह योग्य आयु

सोलह से चौबीस वर्ष तक कन्या और पच्चीस से अड़तालीस वर्ष तक पुरुष का विवाह उत्तम है। मध्यकाल में बालविवाह की घातक प्रथा का प्रचलन हो गया था तथा अल्प वयस कन्याओं के विवाह में शीघ्र बोध तथा पाराशरी आदि कल्पित ग्रन्थों के कल्पना-मूलक श्लोक प्रमाण रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। वस्तुतः विवाह की उत्तम आयु तो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन के पश्चात् ही है।

विवाह के आठ प्रकार

महर्षि ने मनुस्मृति के आधार पर विवाह के आठ प्रकार इस भांति बताये हैं-

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोधमः । मनु०।३।२१।।

विवाह आठ प्रकार के होते हैं- (१)ब्राह्म, (२)देव, (३)आर्ष, (४)प्राजापत्य, (५)आसुर,

(६)गान्धर्व (७)राक्षस (८) और अधम पैशाच। **इनमें से प्रथम चार ही आचरणीय हैं।**

स्वयंवर विवाह ही उत्तम है

मेरे मित्रों और माताओं ! विवाह करने में लड़के-लड़कियों की स्थिति क्या हो,इस संबंध में स्वामी जी ने बताया हैः-

विवाह लड़के और लड़की के अधीन होना उत्तम है। माता-पिता यदि सन्तानों का विवाह कभी विचारें भी तो भी लड़के और लड़की की प्रसन्नता के बिना नहीं होना चाहिए क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने से विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होती है। **इसलिए जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त्त में परम्परा से चली आती थी,उसी प्रकार विवाह करना उत्तम है।**

वर्ण और उनके कर्तव्य

प्यारे मित्रों और माताओं! गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों के निर्धारण में वर्ण व्यवस्था का बड़ा महत्व है। स्वामी दयानन्द ने वर्ण व्यवस्था को जन्म पर आधारित न मानकर गुण-कर्म और स्वभाव पर निर्भर माना है। प्राचीन शास्त्रों ने भी यही मत स्वीकार किया है। महर्षि दयानन्द द्वारा आचार्य मनु के आधार पर चारों वर्णों के गुण,कर्मों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। वेद का पठन पाठन,याजन,दान देना और लेना ब्राह्मणों के कर्तव्य कर्म हैं। प्रजा रक्षण,दान देना,यज्ञ करना और विषयों से पृथक् रहते हुए स्व-कर्तव्यपालन क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं।

कृषि, पशुपालन, व्यापार-व्यवसाय के द्वारा वैश्य अपनी जीविका का उपार्जन करता है, परन्तु वेद का अध्ययन, यज्ञ करना, दान देना आदि अन्य द्विजोचित कर्म उसके लिए भी समान रूप से ही करणीय हैं। शूद्र के लिए द्विजादि की सेवा करना ही एकमात्र कर्तव्य बताया गया है। कारण यह है कि वह प्रतिभा, मेधा, बुद्धि, और प्रज्ञा में अन्यों से हीन होता है। परन्तु इन्हीं शूद्रों के कुल में उत्पन्न बालक बालिकाओं को शिक्षा के अधिकार से कदापि वंचित नहीं किया जा सकता। ये बालक-बालिका भी द्विजों के बालकों के साथ विद्याध्ययन कर,योग्यता प्राप्त कर द्विज बन सकेंगे।

क्या वर्ण परिवर्तन हो सकता है?

बन्धुओं ! प्राचीन इतिहास में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि गुण, कर्महीन जन्मना ब्राह्मण को शूद्र माना गया और ब्राह्मणोचित गुण, कर्म वाले शूद्र कुलोत्पन्न व्यक्ति को द्विज कहा गया। इसी प्रसंग में प्रत्यक्ष उदाहरण हैं- महर्षि जाबाल जो कि अज्ञात कुल के थे लेकिन योग्यता के आधार पर ब्राह्मण हो गए। इसी प्रकार विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण से और मातंग ऋषि चांडाल कुल से गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण हो गए।

महर्षि मनु ने वर्ण परिवर्तन की व्यवस्था इस प्रकार दी है-

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च। मनु०१०।६५।

इस श्लोक का भाष्य करते हुए स्वामी जी ने लिखा है-

जो शूद्र कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाये। वैसे ही जो ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म और स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाये,वैसे ही क्षत्रिय या वैश्य कुल में उत्पन्न हो के ब्राह्मण ब्राह्मणी वे शूद्र के समान होने से ब्राह्मण आदि शूद्र भी हो जाता है। **अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश्य जो-जो पुरुष वा स्त्री हों वह उसी वर्ण में गिने जावें।**

गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी व्यवहार

श्रद्धास्पद बुजुर्गों,माताओं और साथियों! किसी भी गाड़ी के दो पहिए होते हैं। यह हम सभी जानते हैं कि वे आकार-प्रकार में बिल्कुल समान होते हैं। थोड़ा भी फर्क होने पर वे गाड़ी का भार न ढो सकेंगे-गाड़ी चल न सकेगी। पहिये के सभी अरे इन पहियों के केन्द्र से जुड़े रहते हैं और ये दोनों पहिये एक धुरी से जुड़े रहते हैं। बस, हमें याद रखना है कि गृहस्थ रूपी महान् रथ या गाड़ी के दो पहिये हैं-पति और पत्नी- इनमें काई छोटा बड़ा नहीं। गृहस्थ की गाड़ी के सुसंचालन के लिए पहली आवश्यकता है,इनमें विचारों और आदर्शों का ऐक्य तथा समानता। परिवार के अन्य सभी सदस्य सदस्यायें तो अरों की भांति इन्हीं दो के हृदय केन्द्रों से जुड़े रहते हैं **और इन दोनों के हृदय केन्द्रों को जोड़ती है-प्रेम-धुरी। प्रेम, आत्मीयता व सद्भावना की धुरी गृहस्थ जीवन का मूलाधार है।**

पति पत्नी का परस्पर व्यवहार कैसा हो? इस संबंध में महर्षि दयानन्द मनुस्मृति का उद्धरण देते हुए लिखते हैं-

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। मनु० २।६०

अर्थात् जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती और जहां विरोध, कलह होता है वहां दुःख दरिद्रता और अशान्ति निवास करती है।

पतिव्रत और पत्नीव्रत धर्म

माताओं और सज्जनों! विवाह के समय पाणिग्रहण के चतुर्थ मन्त्र द्वारा पति प्रतिज्ञा करता है -देवि! मैं व्रत लेता हूँ कि संसार में तुम्हारे अतिरिक्त जितनी भी स्त्रियां हैं उनको मैं माता-बहिन या पुत्री की दृष्टि से ही देखँगा इसी प्रकार पत्नी प्रतिज्ञा करती है- आप से भिन्न जितने भी पुरुष हैं उनमें मेरी पिता,पुत्र और भाई बुद्धि रहेगी।

परस्पर चोरी का त्याग

'न स्तेय मद्मि' इन शब्दों में चोरी से कुछ भी खाने-पीने पहिनने और यहां तक कि कोई भी कार्य करने का निषेध है। पत्नी सर्वोत्तम मित्र और मन्त्रदाता होने से पुरुष रूपी राजा की मन्त्री है। प्रत्येक कार्य, व्यापार में पत्नी की सलाह आवश्यक है।

पति के लिए करणीय कर्त्तव्य

यहां भी महर्षि दयानन्द मनुस्मृति के प्रमाण देते हुए पति के मुख्य कर्त्तव्य को इस प्रकार वर्णित करते हैंः-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः। मनु०।३।५६।

जिस कुल में नारियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है । उस कुल में दिव्य गुण,दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं, और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहां जानो उनकी सब क्रिया निष्फल हैं।

तस्मादेताःसदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च। मनु०३।५६।

इसलिए ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले पुरुषों को योग्य है कि इन स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र, खान पान आदि से सदा पूजा अर्थात् सत्कार युक्त प्रसन्न रखे।

पत्नी के कर्त्तव्य कर्म

पति की भांति पत्नी के कर्त्तव्यों का निरूपण महर्षि मनु ने इस प्रकार किया है

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया। मनु०५।१५०।।

स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराई युक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार, घर की शुद्धि और व्यय में अत्यन्त उदार न रहे अर्थात् सब चीजों को पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो औषध रूप होकर शरीर वा आत्मा में रोग को न आने देवें। जो जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रख के पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर चाकरों से यथायोग्य काम लेवे। घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।

गृहस्थ के दैनिक पांच कर्त्तव्य और उनके फल

सत्संग प्रेमी बन्धुओं और माताओं! वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासना-ब्रह्मयज्ञ, माता-पिता आदि की अन्नादि द्वारा तृप्ति करना-पितृयज्ञ, प्रातः सायं होम करना-देवयज्ञ, कुत्तों कंगाली,कुष्ठी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों को बलि-भाग देना-भूतयज्ञ अथवा बलिवैश्वदेव यज्ञ और जो विद्वान् उपदेशक, संन्यासी गृह पर आवें उनकी समुचित सेवा करना व उनसे सदुपदेश ग्रहण करना अतिथि यज्ञ ये पंच महायज्ञ हैं। जिनका पालन करना प्रत्येक गृहस्थ का परम धर्म है।

ब्रह्मयज्ञ और देव यज्ञ

प्यारे साथियो और माताओ ! ब्रह्म यज्ञ और देव यज्ञ के विषय में तथा उनसे होने वाले लाभों के विषय में कल की कथा में विचार किया था, अब शेष यज्ञों के विषय में संक्षेप से विचार किया जाता है।

पितृ यज्ञ

मित्रों और माताओ! आप सभी जानते हैं कि माता-पिता के भक्त श्रवण कुमार किस प्रकार अपने माता-पिता की इच्छा की पूर्ति हेतु देशाटन के लिए उन्हें ले गए और किस प्रकार महाराज दशरथ के बाण से हिसंक सिंह के धोखे में इस आर्यवीर को प्राण त्यागने पड़े। मरते समय इस वीर को यही विचार था-मेरे माता-पिता का क्या बनेगा? प्रभो! मेरे माता-पिता को संरक्षण देना। माता-पिता के पवित्र चरणों में ध्यान करते करते जीवनोत्सर्ग करने वाले आर्य शिरोमणि श्रवणकुमार अपने इस एक गुण से ही अमर हो गये।

वैदिक मूर्धन्य आदर्श मातृ-पितृ भक्त श्रीराम के यह शब्द कितने प्रेरक हैं-

'आज्ञा के बिना पिता का कार्य सम्पादन करने वाला पुत्र उत्तम है,आज्ञा पाने पर जो पिता का कार्य करता है वह मध्यम पुत्र है तथा जो आज्ञा पाने पर भी उनका पालन नहीं करता वह तो भारस्वरूप है।'

वैदिक संस्कृति के ज्वलन्त आदर्श श्रीराम के पुजारी प्रत्येक सद्गृहस्थ आर्य का यह पितृयज्ञ नित्य कर्त्तव्य है।

बन्धुओं ! महर्षि दयानन्द इस पितृ यज्ञ का विवेचन करते हुए लिखते हैं-

अग्निहोत्र विधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे। इसमें जीवित देव अर्थात् विद्वान्, ऋषि अर्थात् पढ़ने पढ़ाने वाले(अन्वेषक, चिन्तक, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि) और पितर अर्थात् माता-पिता, सास, श्वसुर पितामह(दादा) पितामही आदि वृद्ध बान्धव तथा ज्ञानी परमयोगियों की जो प्रत्यक्ष विद्यमान(जीवित) हैं, सेवा करनी होती है। इसके दो भेद हैं, (१)श्राद्ध और (२)तर्पण। यह श्राद्ध और तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं, उनमें ही घटता है,मृतकों में नहीं इनके अभिप्राय से ही वेदों तथा मनुस्मृति आदि आर्ष ग्रन्थों में कहा गया है।'

श्राद्ध और तर्पण पृथक्-पृथक् कर्म नहीं,एक ही कर्म के दो रूप हैं। गृहस्थों द्वारा जो पितरजनों का अत्यन्त प्रीतिपूर्वक श्रद्धा से सेवन करना है,सो श्राद्ध और जिस सेवन कर्म से देव-ऋषि पितर सुख युक्त होते हैं, वही तर्पण कहाता है। कर्त्ता-गृहस्थ की दृष्टि से, इस सेवन सत्कार का नाम श्राद्ध और भोक्ता देव-ऋषि पितर की दृष्टि से इसी का नाम तर्पण है।

पितृयज्ञ का फल

इस यज्ञ का फल यह है कि गृहस्थी जब माता-पिता और ज्ञानी महात्माओं की सेवा करेगा तब उनकी कृपा से उसका ज्ञान बढ़ेगा और गृहस्थी सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से

सुखी रहेगा। पितृ यज्ञ का दूसरा फल है कृतज्ञता अर्थात् जैसी सेवा माता-पिता और आचार्य ने सन्तान और शिष्यों की की है उसका बदला देना भी उचित ही है और यह पितृयज्ञ द्वारा दिया जाता है। सुयोग्य सन्तान के रूप में राष्ट्र के लिए सुयोग्य नागरिकों का निर्माण भी 'पितृयज्ञ' का ही सुफल है।

अतिथि यज्ञ

इस यज्ञ का विवेचन करते हुए स्वामी जी लिखते हैं-

अतिथि उनको कहते हैं- जो मनुष्य पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी छल-कपट आदि दोष-रहित, सत्योपदेशक परम योगी, संन्यासी नित्य भ्रमण करके विद्या तथा धर्म का प्रचार और अविद्या तथा अधर्म की निवृत्ति सदा करते हैं। जिसके आने-जाने की कोई तिथि या दिन निश्चित न हो अकस्मात् स्वेच्छा से कहीं से आवे और चला जावे या नित्य भ्रमण करने वाला परिव्राजक(संन्यासी) हो समय पाके गृहस्थ और राजा (शासक,अधिकारी,जनहितकर्त्ता नेता भी) अतिथिवत् सत्कार योग्य होते हैं।

इसका भाव यह है कि विशेषतः समाज, राष्ट्र व जगत् के उपकारार्थ निःस्वार्थ सेवापरायण जन सेवक या सत्योपदेष्टा पक्षपात रहित निष्काम, शान्त, परमयोगी सर्वहितकारी, विद्वान्, ज्ञानी, साधु संन्यासी, परिव्राजकों का 'अन्न पान वस्त्र' द्वारा सत्कार करना। और सामान्यतः ब्रह्मचर्य आश्रम से संबंधित आचार्यों,अध्यापकों,गुरुओं,वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर तप स्वाध्याय में रत पितृ समान विद्वानों तथा संन्यासाश्रयी नित्य भ्रमण करने वाले धर्मात्मा ज्ञानियों के भोजन-निवास-स्वाध्याय के समुचित प्रबन्ध में हिस्सा बंटाना अतिथि यज्ञ है।

अतिथि यज्ञ का फल

उत्तम अतिथि(विद्वानों,सत्योपदेशक जनों) के सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और मनुष्य मात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। बिना ऐसे अतिथियों के (सामान्य प्रजाजनों के मनों की) सन्देह निवृत्ति नहीं होती। सन्देह निवृत्ति के बिना (सत्य में दृढ़-निश्चय के बिना) मनुष्य को सुख शान्ति कहां?

प्यारे मित्रों और माताओ! अतिथि यज्ञ प्रत्येक परिवार के लिए परमावश्यक कर्त्तव्य है। मैं इसी पारिवारिक आतिथ्य की मनोरम झांकी आपके समक्ष रखने लगा हूँः -

सुदामा जब श्रीकृष्ण के पास पहुंचते हैं तब अपने मित्र सुदामा को देखते ही कृष्ण कौली भर लेते हैं। वे स्वयं सुदामा के पैर धोने लगते हैं। पर यह क्या? परात के पानी की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। प्रेमाश्रु जल से ही वे मित्र के चरण पखारते हैं। कवि के शब्दों में-

ऐसे बेहाल बिवाइन सो फटे कण्टक जाल लगे पुनि जोए।
हाय महादुःख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोए?।
देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिके करुणा निधि रोऐे।
पानी परात को हाथ छुओ नहिं नैनन के जल सों पग धोए।

मित्र धर्म और अतिथि धर्म का ऐसी अद्‌भुत निष्ठा से पालन करने वाले योगेश्वर कृष्ण हमारे इतिहास में अमर हो गये हैं।

पाखण्डियों से बचें

बन्धुओं! किन मनुष्यों का आतिथ्य न करना चाहिए इस संबंध में स्वामी जी मनुस्मृति का प्रमाण देते हैं-

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रःसर्वाभिसन्धकः।। मनु०४।१६५।।

(धर्मध्वजी) धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्म के नाम से लोगों को ठगे (सदालुब्धक) सर्वदा लोभ से युक्त (छद्मिकः) कपटी (लोक दम्भकः) संसारी मनुष्य के सामने अपनी बड़ाई के गपोढ़े मारा करे (हिस्रः)प्राणियों का घातक,अन्य से वैर बुद्धि रखने वाला(सर्वाभिसन्धकः) सब अच्छे और बुरों से भी मेल रखे,उसको बैडालवृत्तिक अर्थात् बिडाले के समान धूर्त और नीच समझो। ऐसे-ऐसे लक्षणों वाले पाखण्डी होते हैं। उनका विश्वास व सेवा कभी न करे।

बलिवैश्वदेव यज्ञ(भूत यज्ञ)विवेचन

प्रतिदिन कुत्ता (गौ) आदि उपकारी प्राणी, पतितों तथा चाण्डालों (अर्थात् कंगालों) कुष्ठी आदि पाप रोगियों (अर्थात् दुष्टव्याधि-ग्रस्तों) और काक,कबूतर आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों (कीटादि) के लिए अपने अन्न के भाग में से अलग-अलग बांट कर देने से सदा उनकी प्रसन्नता होती है। अर्थात् सब प्राणियों का मनुष्यों से सुख होना चाहिए। इससे प्राणिमात्र में समदृष्टि, सर्व भूतदया, अहिंसा तथा परोपकार भावना की वृद्धि होती है।

बलिवैश्वदेव यज्ञ का फल

इस यज्ञ में (पक्व और क्षार रहित) अन्न से, प्रज्वलित पाकाग्नि में हवन करने का प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है,उसका प्रत्युपकार कर देना तथा सब जीव हमारे मित्र और हम सब जीवों के मित्र रहें ऐसा जानकर हम सब परस्पर सदा उपकार करते रहें ऐसी भावना की वृद्धि इसका फल है।

आपत् धर्म

सत्संग प्रेमी बन्धुओं और माताओं! गृहस्थ धर्म विवेचन के प्रसंग में आचार्य दयानन्द ने कुछ आपद् धर्मों का भी विवेचन किया है। बाल विधवाओं के लिए पुनर्विवाह की व्यवस्था स्मार्त ग्रन्थों में मिलती है,परन्तु इसे शूद्र वर्ण के लिए ही विधेय माना गया है। प्राचीन धर्मशास्त्रों ने सन्तान न होने पर नियोग विधि से सन्तानोत्पादन का विधान किया था। महाभारत तथा अन्य इतिहास ग्रन्थों में नियोग के अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। हाँ, नियोग की विधि अनिवार्य कर्म नहीं है। आपात् काल में ही इसका आचरण उचित बताया गया है।

गृहस्थाश्रम-महिमा

वस्तुतः गृहस्थाश्रम पर ही अन्य आश्रमियों का जीवन निर्भर है।

महर्षि ने गृहस्थाश्रम-महिमा के सन्दर्भ में मनुस्मृति के कुछ श्लोक प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकरण के अन्त में वे लिखते हैंः-

जितना कुछ व्यवहार संसार में है- उसका आधार गृहस्थाश्रम है। जो यह गृहस्थाश्रम न होता, तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहां से होते ? जो कोई गृहस्थाश्रम की निन्दा करता है,वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वह प्रशंसनीय है।'

मेरे मित्रो, बुजुर्गों और माताओ! आज इस गृहस्थाश्रम प्रकरण को यहीं विराम देते हैं। कल हम वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम पर कुछ विचार देने का यत्न करेंगे। सत्यपाल द्वारा आज की कथा समाप्त होने पर शान्ति पाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हो गई।

पांचवा दिन

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम

मुखिया चन्दनसिंह की चौपाल सत्संग का प्रमुख केन्द्र बन गई है। कल की कथा का वहां के निवासियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है, इसीलिए कल की अपेक्षा आज वहां अधिक सत्संग प्रेमी हैं। सत्यपाल ने भी अपना स्थान ग्रहण कर लिया है। तभी एक बुजुर्ग उठकर बोले-भइया सत्पाल,तुमने अपनी कथा द्वारा सारे गांव भर को अपने विचारों का बन्धुआ बना लिया है। और अब यह सारा गांव ही एक प्रकार से सत्यार्थ प्रकाश के विचारों के रंग में रंग चला है। भइया कल तुमने कहा था कि आज तुम वानप्रस्थ और संन्यास पर कुछ प्रकाश डालोगे, हम सब बड़ी उत्सुकता से इस विषय पर तुम्हारे विचार सुनने को उपस्थित हैं। इन सज्जन के बैठते ही सत्यपाल ने बड़ी विनय भरी वाणी में कहा-यह विचार मेरे नहीं ऋषि दयानन्द के हैं और ऋषि के यह विचार भी पवित्र वेदों और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषि-मुनियों के चिन्तन के आधार पर हैं। हां, आज के युग में इन उत्तम विचारों का सम्पूर्ण श्रेय ऋषि दयानन्द को ही है। आज की कथा में मैं इन दोनों आश्रमों के विषय में स्वामी जी की अमर कृति सत्यार्थ प्रकाश के पांचवें समुल्लास के आधार पर कुछ विचार आपके समक्ष रखता हूँ।

वानप्रस्थ आश्रम

मित्रो और माताओ! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास इसी क्रम से आश्रम व्यवस्था का पालन करता हुआ मनुष्य 'मनुष्य' बनकर इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ के पश्चात् मानव निर्माण की तीसरी सीढ़ी वानप्रस्थाश्रम है। जब व्यक्ति यह अनुभव करे कि उसके केश श्वेत हो गये हैं, त्वचा ढीली हो गई है तथा पौत्र का जन्म हो गया है तो उसे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश ले लेना चाहिए।

वानप्रस्थ के कर्त्तव्य

महर्षि दयानन्द ने मनुस्मृति के आधार पर वानप्रस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का विधान इस प्रकार किया है:-

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ।।६।३।।

जब वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा लेवें तब ग्रामों में उत्पन्न हुए पदार्थों का आहार और घर के (वस्त्रादि) सब पदार्थों को छोड़ के पुत्रों में अपनी पत्नी को छोड़ अथवा संग ले के वन को जावे।

स्वाध्याये नित्ययुक्तःस्याद्दान्तो मैत्रःसमाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः।।मनु०।६।८

वहां जंगल में भी वेदादि शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने में नित्य युक्त-मन और इन्द्रियों को जीतकर यदि स्व-स्त्री भी समीप हो तथापि उससे सेवा के सिवाय विषय-सेवन अर्थात् प्रसंग कभी न करे-सबसे मित्र भाव,सावधान,नित्य देने वाला और किसी से कुछ भी न लेवे,सब प्राणी मात्र पर अनुकम्पा-कृपा रखने वाला होवे।

अप्रयत्नःसुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः।।मनु०६।२६।।

शरीर के सुख के लिए अति प्रयत्न न करे, ब्रह्मचारी रहे, भूमि में सोवे,अपने आश्रितों व स्वकीय पदार्थों में ममता न करे, वृक्ष के मूल में बसे।

एताश्चान्यान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विवियाश्चौपनिषदीरात्मससिद्धये श्रुति।।मनु०६।२६।।

इस प्रकार वन में बसता हुआ(विद्वान् द्विज) इन और अन्य दीक्षाओं का सेवन करे। साथ ही आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के लिए नाना प्रकार की उपनिषद् अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार किया करे।

इस प्रकार वानप्रस्थी के लिए उचित है कि संयम,नियम का पालन करते हुए स्वाध्यायः इन्द्रिय-दमन तथा नाना व्रतों का सेवन करता हुआ ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करे। इस प्रकार तपश्चर्या योगाभ्यास सत्संग और ईश्वर चिन्तन में अपना समय व्यतीत करता हुआ वानप्रस्थी समय आने पर संन्यास की दीक्षा ग्रहण करता है।

सज्जनो! वास्तव में वानप्रस्थ आश्रम आत्मीयता के विस्तार के अभ्यास के लिए है। ब्रह्मचर्याश्रम में एक व्यक्ति का केवल अपनी ही शारीरिक,मानसिक और आत्मिक उन्नति का लक्ष्य था,गृहस्थाश्रम में यह परिधि विस्तृत हुई। अब एक सद्गृहस्थ के रूप में उसे अपने समस्त परिवार की समुन्नति का ध्यान है। वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में यह परिधि क्रमशः और भी विस्तृत हो जाती है, आत्मीयता का व्यापक विस्तार हो जाता है। अब सम्पूर्ण, समाज राष्ट्र और क्रमशः सारा संसार ही उसका परिवार हो जाता है और-

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

संन्यासी के लिए सारा संसार ही उसका कुटुम्ब या आत्मरूप हो जाता है। इसी आदर्श भावना को जीवन में लाने के लिए वानप्रस्थाश्रम सहायक या साधना का आश्रम है। अतः मानव बनने के अभिलाषी प्रत्येक जन को इस आश्रम का सेवन करना अनिवार्य है।

संन्यास आश्रम महिमा

सत्संग प्रेमी बन्धुओं! आधुनिक भारत के निर्माता, युग प्रवर्त्तक, वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था के उद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संन्यास आश्रम की गरिमा तथा महत्ता का दिग्दर्शन कराते हुए संस्कार-विधि के संन्यास-प्रकरण में तथा सत्यार्थ प्रकाश के पंचम समुल्लास में संन्यासी के कर्त्तव्यों का विवेचन प्रस्तुत किया है तथा आदर्श संन्यासी के लक्षण प्रतिपादित किये हैं।

संन्यास आश्रम का समय

वानप्रस्थी को चाहिए कि वह आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से ७५ वें वर्ष पर्यन्त इस आश्रम का निर्वाह कर अपने जीवन के चतुर्थ भाग में सर्व संग परित्याग कर परिव्राजक वृत्ति को धारण करे। सामान्यतया गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रम के पश्चात् ही संन्यास दीक्षा लेने का विधान है, किन्तु तीव्र वैराग्य की स्थिति में ब्रह्मचर्य से सीधे संन्यास ग्रहण करने के उदाहरण मिलते हैं। वस्तुतः तीव्र वैराग्य एवं संसार के सुखों से विमुख होकर ईश्वर चिन्तन तथा लोक मंगल के अनुष्ठान में पूर्णतया समर्पित करने की भावना ही संन्यास का कारण बनती है। इसी भावना से ओतप्रोत स्वयं महर्षि दयानन्द ने भी ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे संन्यासाश्रम में प्रवेश किया था।

संन्यासी के चिह्न

महर्षि ने संन्यासी के चिह्न इस प्रकार लिखे हैं-

'संन्यासी सिर के सब बाल, दाढ़ी, मूँछ और नखों को समय पर छेदन कराता रहे, पात्र, दण्ड और कुसुम्भ के रंगे हुए वस्त्रों को धारण किया करे तथा सब भूत-प्राणी मात्र को पीड़ा न देता हुआ सबके कल्याण के लिए दृढ़ात्मा होकर नित्य विचरा करे।

संन्यासी का स्वरूप

संन्यास ग्रहण करते समय दीक्षा लेने वाले व्यक्ति को पुत्रैषणा वित्तैषणा एवं लोकेषणा से पूर्ण मुक्त होने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है,ऐसे लोग भिक्षा वृत्ति स्वीकार कर परोपकार वृत्ति से समस्त संसार में निर्भीक भाव से विचरण करते हैं। संन्यासी होने वाला व्यक्ति प्रजापति परमेश्वर की प्राप्ति के लिए शास्त्रोक्त इष्टि(यज्ञ) का सम्पादन करता है। तत्पश्चात् यह आह्वनीयादि पंचाग्नियों को त्यागकर अग्निहोत्र के अनुष्ठान छोड़ देता है अब उसे यज्ञोपवीत (शिखा आदि के चिह्नों) की भी आवश्यकता नहीं रहती। प्राणिमात्र को अभय दान देकर संन्यासी घर से निकल पड़ता है। उसका एक मात्र जीवनोद्देश्य प्राणिहित सम्पादन द्वारा आत्मशुद्धि एवं ईश्वर-चिन्तन ही है।

संन्यासी परम निर्भीक,उदार तथा निःस्वार्थ होता है। सत्य को सत्य प्रतिपादित करना,जनता का पथ-प्रदर्शन करना तथा मानवता को दानवता के कुटिल पाशों से मुक्त रखना उसके जीवन का व्रत होता है,और होता है प्रभु की आज्ञा का पालन ही उसका जीवन दर्शन।

संन्यासी के कर्त्तव्य

संन्यासियों के लिए आचरणीय धर्मों का विवरण महर्षि मनु ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

संन्यासी को चाहिए कि वह अपनी इन्द्रियों पर संयम रखे तथा विद्या एवं धर्म प्रचारार्थ सर्वत्र विचरण करे। उसके लिए निन्दा-स्तुति, हानि-लाभ, मानापमान आदि समान होने चाहिए। धैर्य, क्षमा दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह धी, विद्या, सत्य और अक्रोध-इन दस लक्षण युक्त धर्म का पालन करने में उसे सदा रत रहना चाहिए। ब्राह्मण ही संन्यास ग्रहण करने का अधिकारी है, क्योंकि वही सब वर्णों में पूर्ण विद्वान्,धार्मिक,परोपकार प्रिय होता है। चूँकि ब्राह्मण संसार का उपकार करने हेतु समर्पित है, अतः वही संन्यासी बनकर अधिकाधिक लोक हित में प्रवृत्त होता है।'

सामान्यतया यह प्रवाद प्रचलित है कि संन्यासियों के लिए संसार में कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रहता अतः वे आलस्य और प्रमाद का जीवन व्यतीत करते हुए व्यर्थ के देशाटन में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मानते हैं। परन्तु यह उचित नहीं है। संन्यासी तो लोकोपकार के लिए ही 'स्व' का समर्पण करता है। अतः उसे विद्या, धर्म तथा सत्य एवं न्याय के प्रचार में ही अपने को लगाना चाहिए। कर्म से पूर्ण विश्राम तो मृत्यु के पश्चात् ही मिलता है । जब तक जीवन धारण करे, तब तक उसे अनलस भाव से मानव मात्र और प्राणिमात्र की सेवा रूप कर्त्तव्य आचरण करने में रत रहना चाहिए।

माताओ और मित्रों! संन्यासी के कर्त्तव्यों के विवेचन के साथ ही आज की कथा को समाप्त करते हैं। कल 'राज धर्म' विशय पर विचार विमर्श करेंगे। इत्योम् शम्।

छठा दिन

वैदिक राजनीति या राजधर्म

सायंकाल का समय है। आज की कथा में स्थानीय श्रोताओं के अतिरिक्त आस-पास के गांवों से भी अनेकों व्यक्ति भाग लेने के लिए आये हुए हैं। सत्यपाल ने ईश-प्रार्थना के पश्चात् 'वैदिक राजनीति' या राजधर्म(राष्ट्र धर्म) इस विषय को लेकर आज की कथा का प्रारम्भ किया।

आदरणीय गुरुजनो,पूज्या माताओ और मित्रो! सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास के प्रकाश में हमने विचार किया था कि सुख-शान्ति के धाम एकमात्र ओ३म् प्रभु की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। पर ईश्वर की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य ईश्वर और उसके स्वरूप को जाने और उससे भी पहले आवश्यक है कि मनुष्य अपने आपको जाने। अर्थात् शब्द के सही अर्थों में 'मनुष्य' बने। द्वितीय समुल्लास से पांचवें समुल्लास तक वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में इसी मानव निर्माण पद्धति का विचार है। अपने और अपने परिवार के प्रति सम्यक् कर्त्तव्य का पालन करके ही राष्ट्र धर्म या राजधर्म का विचार करना उचित और व्यावहारिक है। इस प्रकार छठे समुल्लास में राजधर्म का विचार आचार्य दयानन्द के ऋषित्व का परिचायक है।

सज्जनो! राष्ट्रोदय के लिये राजा और प्रजा की ओर से प्रयत्न होना राजधर्म है। जिस प्रकार किसी परिवार के अन्दर एक गृहपति धार्मिक, 'सुविद्वान्',व्यवस्था आदि में कुशल होने पर परिवार की रक्षा आदि में समर्थ हो सकता है, तथा पारिवारिकजन भी गृहपति की अनुमति के अनुसार सर्व प्रकार से योग्य होते हुए यथेष्ट सुखी रह सकते हैं। परिवार के कुशल संचालन के लिए अन्नादि आवश्यक वस्तुएं और रहने के लिए घर आदि सामग्री का होना अत्यावश्यक है, ठीक इसी प्रकार राष्ट्र रूपी वृहद् परिवार के संचालन के लिए सुयोग्य राष्ट्रपति और उत्तम प्रजा तथा सुरक्षित अनुकूल भूप्रदेश के साथ ही राज सभाओं, मंत्रियों, न्यायालयों, राजदूतों, गुप्तचरों, राज कर्मचारियों, सेनाओं तथा सेनापति आदि की आवश्यकता होती है। इन सब व्यवस्थाओं से संबंधित वैदिक राजधर्म का संक्षिप्त विवेचन सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में किया गया है।

राजा

मित्रो और माताओ! इन सब में राजा सबका मुखिया अर्थात् प्रधान होता है। **वेदों के मन्तव्य के अनुसार राजा को प्रजा चुनती है और उसे हटा भी सकती है।**[३] साथ ही प्रजा का कर्त्तव्य है कि वह ऐसे व्यक्ति को राजा चुने जो प्रजा में सर्वश्रेष्ठ हो, शत्रुओं को जीत सके, प्रशंसनीय गुण, कर्म-स्वभाव युक्त हो, सत्कारणीय हो और परम सुशिक्षित हो।

वस्तुतः राजा का उत्तरदायित्व विशेष होता है क्योंकि 'यथा राजा तथा प्रजा' का एक निश्चित सिद्धान्त है। राजा यदि उत्तम गुण सम्पन्न, प्रजा-हितैषी, न्यायशील और हर प्रकार से योग्य तथा राष्ट्र-उन्नति का इच्छुक हो तो निःसंदेह प्रजा भी कार्यकुशल, राजभक्त,सन्तुष्ट, विद्याप्रिय और राष्ट्रसेवा में तत्पर हो सकती है।

---

(३) अथर्ववेद का.३ सू. ४ मन्त्र २ के अनुसार प्रजा को ही यह अधिकार है कि वह योग्य राजा को चुने।

राजा की आदर्श दिनचर्या

राजा को अपनी आदर्श दिनचर्या शास्त्र के अनुसार चलानी चाहिए। प्रातःकाल शौच, सन्ध्योपासन, अग्निहोत्र से निवृत्त होकर उसे सभा में उपस्थित होना चाहिए, मध्याह्नोत्तर में भोजन और विश्राम के पश्चात् वह अपने गुप्तचरों के द्वारा वृत्तान्त की जानकारी प्राप्त करे और अपना एक एक क्षण प्रजा की सुख समृद्धि और न्याय व्यवस्था में लगाये।

राष्ट्र की तीन सभायें

बन्धुओ, राष्ट्र में राज सभायें कितनी होनी चाहिए- इस संबंध में ऋग्वेद मंडल ३,सूक्त ३८ का छठा मन्त्र निम्न व्यवस्था करता है-

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि। ऋ०३.३८.६

अर्थात् राजा और प्रजा के विद्वद्जन मिलकर राजा हैं। प्रजा के बीच जो सुख प्राप्ति और विज्ञान-वृद्धिकारक संबंध और उसे स्थिर रखने के लिए विद्यार्य सभा,धर्माय सभा और राजार्य सभा की स्थापना करें। तभी विद्या, धर्म, स्वतंत्रता, सुशिक्षा और धनादि सुरक्षित रह सकते हैं।

सभासदों और सेनापति के गुण

सभासदों की नियुक्ति के समय यह आवश्यक है कि विद्यार्य सभा में महाविद्वान् पुरुष ही हों, धर्मार्य सभा में धार्मिक पुरुष और राजार्य सभा में राजनीति में चतुर व्यक्ति ही सभासद बनें। इन सभी में जो सर्वोत्तम गुण-कर्म स्वभाव युक्त महान् पुरुष हो उसे ही सभापति बनावें। सभासदों और सभापति के लिए आवश्यक है कि वे चारों वेदों की विद्याओं, सनातन दण्ड नीति, न्याय विद्या तथा वार्ताओं का कहना और पूछना अच्छी तरह जानते हों।

सभा में कम से कम १० सदस्य होने चाहिये ।इन दसों का चुनाव इस प्रकार होना चाहिए-

इन दसों में आप्त विद्वान् सात -१.ऋग्वेद २.यजुर्वेद,३.सामवेद ४ न्याय शास्त्र ५ मीमांसा ६.निरुक्त ७.धर्मशास्त्र के होने चाहिए। शेष तीन-ब्रह्मचारी, गृहस्थियों तथा वानप्रस्थियों के प्रतिनिधि के रूप में होने चाहिए।

तीन विद्वानों की परिषद् के रूप में ऋग्वेद,यजुर्वेद और सामवेद के ज्ञाता विद्वान् होने चाहिए। इनके द्वारा दी गई व्यवस्था का कभी भी उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

सब वेदों का ज्ञाता, द्विजों में उत्तम अकेला संन्यासी भी जिस धर्म की व्यवस्था करे उसे ही सर्वश्रेष्ठ मानना चाहिये। लाखों मूर्ख मिल कर भी जिस व्यवस्था को बनायें, उसका पालन कभी भी न करना चाहिए। **इसलिये विद्यार्य सभा,धर्मार्य सभा और राजार्य सभा में मूर्खों को कभी भी नियुक्त न करना चाहिए।**

राजा, राजसभा और प्रजा का परस्पर संबंध

राज्याधिकार किसी व्यक्ति विशेष के अधीन नहीं होना चाहिए वरन् इसका क्रम इस प्रकार होना चाहिए- राजा जो कि सभापति होता है,उसके अधीन सभा और सभा के अधीन राजा को होना

चाहिये। इसी प्रकार राजा और सभा दोनों को प्रजा के अधीन तथा प्रजा को राज सभा के अधीन होना चाहिए। इतिहास साक्षी है जहां'राजतन्त्र' शासन रहा,वहां-वहां राजा और उसके अधीन राजवर्ग ने सदैव ही प्रजा का शोषण किया है। इसलिए किसी एक को राज्य में स्वतन्त्र न होना चाहिए।

नियमों (कानून) का निर्माण

उक्त तीनों सभाओं(विद्यार्य,धर्मार्य,राजार्य) की सम्मति से ही राजनीतिक,सामाजिक तथा अन्य नियम प्रजा हित में बनने चाहिए और इन नियमों के अधीन सभी को रहना चाहिए।

मन्त्रि-मण्डल का निर्माण

बन्धुओ! राजा को चाहिए कि वह मन्त्रि-मण्डल में सात या आठ मंत्री ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त करे जो स्वदेशोत्पन्न, वेदादि शास्त्रों के पण्डित, शूरवीर, कुलीन, उत्तम, धार्मिक एवं चतुर हों। साथ ही प्रत्येक मन्त्री को उसकी योग्यता और कार्य कुशलता के अनुसार राज्य के विभिन्न विभागों को सौंप दे।

आदर्श न्याय पद्धति

मेरी माताओ और सज्जनो! आचार्य मनु ने न्याय पद्धति का भी विस्तार से उल्लेख किया है,जिसकी सहायता से राजा अन्याय,अत्याचार एवं अपराध वृत्ति का उन्मूलन करता है। अपराधियों को दण्ड और निरपराधियों को अभय दान देना ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है। न्याय प्रदान करते समय राजा व्यवहार(मुकद्दमा) का संचालन करे,साक्षियों के द्वारा तथ्यों का निर्धारण करे तथा वास्तविकता तक पहुंच कर अपराधियों के लिए दण्ड का विधान करे, यह सभी विस्तारपूर्वक मनु के आधार पर इस छठे समुल्लास में वर्णित है। दण्ड का उद्देश्य यह है कि अपराध करने वाला भविष्य में अपराध नहीं करे साथ ही अन्य लोग यह समझ कर कि अपराधी को निश्चित रूप से दण्ड मिलता है,अपराधों से बचें। प्रजा को निष्पाप और पवित्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यदि शासकगण वही अपराध करें तो उन्हें सामान्य जनता से कई गुना अधिक दण्ड मिलना चाहिए। यही मनु आदि शास्त्रकारों की व्यवस्था है। [४]

सेना और सेनापति

राष्ट्र की सेना को सब प्रकार से सुदृढ़ होना चाहिए। सभी सैनिकों और सेनापतियों के ऊपर एक मुख्य सेनापति होना चाहिए। साथ ही सेना को युद्ध की सभी आवश्यक सामग्री से युक्त होना चाहिए,ताकि युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर राजा अपने कुशल सेनापतियों की सहायता से सूची व्यूह, वज्र, सर्प व्यूह आदि प्रकारों से सेना का कुशल संचालन कर विजय प्राप्त कर सके।

अपने सैनिकों के साथ व्यवहार

राजा को अपने सैनिकों की सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। साथ ही युद्ध में जीते हुए धन का १६ वां भाग सभी सैनिकों में समान रूप से वितरित कर देना चाहिए। युद्ध में यदि कोई सैनिक मर जाता है तो उसके पश्चात् उसके परिवार को उचित संरक्षण देना चाहिए।

---

(४) इसी न्याय पद्दति का समर्थन करते हुए स्वामी जी ने लिखा है - 'जो प्रजा का न्याय करना है वह व्यवहार मनुस्मृति के अष्टम और नवमाध्याय आदि की रीति से करना चाहिए।'

राजदूतों की नियुक्ति

राजा को यह चाहिए कि वह ऐसे व्यक्ति को, जो निष्कपटी पवित्रात्मा हो, सब शास्त्रों का ज्ञाता हो, देश और काल का ज्ञाता हो, उत्तम वक्ता हो, साथ ही फूट और मेल कराने की विद्या में निपुण हो-राजदूत नियुक्त करे।

गुप्तचरों की नियुक्ति

बन्धुओ, राष्ट्र में दो सभापति होने चाहिए। इनमें से एक राज सभा में कार्य करे तथा दूसरे को आलस्य छोड़कर सभी राज पुरुषों के कार्यों को देखते रहना चाहिए। पूरा गुप्तचर विभाग इसी सभापति के अधीन होना चाहिए ताकि वह उनके द्वारा राजपुरुषों और प्रजाजनों के गुणदोषों को गुप्त रीति से जान सके। जिनका अपराध हो उन्हें दण्डित तथा जिनका कार्य अच्छा हो उन्हें पुरस्कृत किया जा सके।

राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति

राजा को चाहिए कि वह बलवान और बुद्धिमान् पुरुषों को अधिकारी नियुक्त करे, साथ ही राज्यकार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों को सभा नियुक्त करे। राजा जिनको प्रजा की रक्षा का अधिकार दे, वे धार्मिक, सुपरीक्षित, विद्वान् तथा कुलीन होने चाहिए। इन अध्यक्षों को चाहिये कि वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों का विधिवत् निरीक्षण करते रहें। दोषी पाये जाने वाले को दण्डित करने के साथ ही अच्छा कार्य करते पाये जाने वाले को पुरस्कृत करना चाहिए।

राज्य कर्मचारियों का वेतन

जितने वेतन से राज कर्मचारियों का उचित पोषण हो सके उतना वेतन राज्य की ओर से उन्हें मिलना चाहिए और साथ ही जो वृद्ध हो जाएं तो उन्हें भी आधा वेतन मिलना चाहिए।

राज्य कर

बन्धुओ ! अप्राप्त की प्राप्ति,प्राप्त की रक्षा, रक्षित की वृद्धि तथा वृद्धित धन का सदुपयोग राजा का आवश्यक कर्तव्य है। कर वसूली और राजस्व प्राप्ति के लिए शास्त्रकारों ने जो नियम बनाये हैं, उन्हीं का अनुसरण कर्तव्य है। जिस प्रकार चतुर भ्रमर फूलों को कुछ भी हानि न पहुंचाते हुए भी उससे रस ग्रहण कर लेता है,उसी प्रकार राजा भी अपने प्रजाजनों को बिना कष्ट दिये उनकी आय का छठा भाग कर रूप में प्राप्त करता है तथा इस संचित कोष को प्रजा के हित में ही व्यय करता है।

इस प्रकार राजधर्म का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते हुए महर्षि ने इस विषय को और भी अधिक विस्तार से जानने के लिए मनुस्मृति, विदुर नीति, शुक्रनीति आदि ग्रन्थों को पढ़ने की प्रेरणा की है।

मेरे मित्रो,बुजुर्गों और माताओ!वैदिक राजनीति या राजधर्म के इस संक्षिप्त विवेचन के साथ ही आज की कथा को यहीं विराम देते हैं। कल की कथा में 'ईश्वर और वेद' इस विषय पर चर्चा करेंगे।

सातवां दिन

ईश्वर और वेद

आज एकादशी है । इस दिन को आसपास के कई गांव मिलकर एक पर्व के रूप में प्रतिवर्ष मनाते रहे हैं। मोहन के सत्यप्रयास से आसपास के सभी ग्रामवासियों ने इस पर्व को सत्संग के रूप में परिवर्तित करने का निश्चय लिया है। कार्यक्रम का प्रारम्भ दैनिक संध्या और अग्निहोत्र से हुआ। यज्ञ की समाप्ति पर ईश्वर-प्रार्थना परक भजन गाये गये। भजनों की समाप्ति पर ईश्वर और वेद,इस विषय पर सत्यपाल ने आज की कथा का शुभारम्भ किया।

मेरे आदरणीय गुरुजनों,पूज्या माताओं और मित्रो! हम पिछले दिनों के कथा क्रम में बराबर यह विचार करते रहे हैं कि शान्तिधाम प्रभु की प्राप्ति ही जन्म जन्मान्तर से चली आ रही, शांति की प्यासी आत्मा की,इस यात्रा का अन्तिम लक्ष्य है। एक मात्र मनुष्य चोले में ही आत्मा की यह चाह पूरा होना सम्भव है। इसीलिए हमारे शास्त्रकारों और ऋषियों ने ईश्वर की प्राप्ति को ही 'परम पुरुषार्थ' बताया है।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर चर्चा का आरम्भ करके मानो इसी सच्चाई की ओर संकेत किया गया है। पर **'समान शील व्यसनेषु सख्यम्'** अर्थात् समान शील(गुण वा आचरण) और समान रुचि वालों में ही मित्रता होती है। इस सूक्ति के अनुसार उस पवित्रतम को पाने के लिए मनुष्य को भी अपने शरीर मन,बुद्धि,और आत्मा को स्वस्थ-सबल और पवित्र बनाना होगा। उस प्रियतम प्रभु का प्यार पाने के लिए मनुष्य को प्रभु की प्यारी प्रजा अर्थात् अपने परिवार, पड़ौसी, अपने समाज-राष्ट्र, विश्व मानव और प्राणि मात्र को प्यार करना होगा। सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास से छठे समुल्लास तक वर्णाश्रम धर्म, पंच महायज्ञ एवं यम नियमादि के पालन के साथ ही राजधर्म या राष्ट्र धर्म का विधान इसी उद्देश्य से किया गया है। अब सातवें समुल्लास की कथा में ईश्वर और ईश्वर के नित्य ज्ञान-वेद के विषय में संक्षेप में विचार करेंगे।

ईश्वरीय सत्ता का प्रत्यक्षीकरण

मित्रो और माताओ ! जैसे कि हम सभी जानते हैं, सूर्य नित्य पूर्व से निकलता और पश्चिम में डूबता है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन नियम से होता है। आम के वृक्ष पर सेव और सेव के वृक्ष पर आम नहीं लगता। मनुष्य से घोड़े का और घोड़े से मनुष्य का जन्म नहीं होता। जो जन्म लेता है वह अवश्य मरता है। प्राणियों की बुद्धि,कार्य क्षमता और संसार के सुख-दुःख आदि में विषमता होती है। प्रकृति की इस अलौकिक रचना, सृष्टि नियमों की अचलता, सजावट तथा शरीर की अद्भुत रचना,उसके पूर्ण रहस्यों, सूक्ष्मताओं और विचित्रताओं को समझने में मनुष्य की बुद्धि की असमर्थता, संसार की परिवर्तनशीलता, मनुष्य की परवशता और अल्पज्ञता इस बात की द्योतक है कि इस सृष्टि के पीछे कोई सर्वोपरि महत्तम, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति सम्पन्न अव्यक्त, चेतन सत्ता अपना कार्य कर रही है।

सज्जनो! हम देखते हैं कि नाव या जहाज चलाने के नियम बनाये जाते हैं परन्तु केवल उन नियमों से नाव या जहाज स्वतः जल में नहीं चल सकते जब तक उनको चलाने वाली कोई चेतन सत्ता न हो,

इसी प्रकार सृष्टि के नियमों का संचालन स्वतः नहीं हो सकता। जब तक उन नियमों के अनुसार कार्य कराने वाली चेतन सत्ता न हो। इसी अव्यक्त,असीम चेतन सत्ता को हम ईश्वर कहते हैं।

बन्धुओ! यह समस्त दृश्यमान् जगत् परमात्मा के शासन के अधीन है। जब बिना शासक के एक छोटे से राज्य की व्यवस्था और शान्ति कायम नहीं रह सकती तब फिर सृष्टि जैसे असीम और विशाल साम्राज्य की व्यवस्था और शान्ति बिना सर्वोपरि शासक क्यों कर सम्भव हो सकती है? तो संसार का शासन परमात्मा के हाथ में है और हम सब उसकी प्रजा हैं।

ईश्वर का सच्चा स्वरूप

महर्षि दयानन्द ने ईश्वर के स्वरूप को इस प्रकार वर्णित किया है-

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।'

बन्धुओ! महर्षि द्वारा निर्दिष्ट ईश्वर के इन गुणों में से कतिपय गुणों पर कुछ विचार आपके समक्ष रखता हूँ।

ईश्वर सर्वशक्तिमान है

बन्धुओ ! सर्व का अर्थ है-सब और शक्तिमान् का अर्थ है शक्ति वाला अर्थात् जिसमें सभी शक्तियां हों। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि भगवान सभी अच्छे बुरे कर्मों को करने में समर्थ हैं। क्या भगवान् एक ऐसी गठरी बना सकता है जिसे स्वयं न उठा सके? यदि बना सकता है तो उठा न सकने के कारण वह सर्वशक्तिमान् नहीं। क्या परमात्मा अपने को दुःखी, दरिद्री, रोगी तथा भिखारी बना सकता है? क्या ईश्वर एक और ईश्वर बना सकता है?

सर्वशक्तिमान् का अर्थ या अभिप्राय है-परमात्मा को अपने कार्यों अर्थात् सृष्टि बनाने तथा जीवों को उनके कर्मों के अनुकूल न्याय पूर्वक फल देने में किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं।

ईश्वर न्यायकारी है

ईश्वर सबके साथ न्याय करता है,अन्याय कभी नहीं करता। जैसा कोई करता है वैसा ही उसे फल देता है, दुष्टों को दण्ड देता है, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, राजा हो या रंक सबके साथ न्याय करता है, किसी के साथ भेद-भाव नहीं करता और न किसी की सिफारिश सुनता है। प्रभु जीवों को कर्मों का फल देता है। यह उसकी सबसे बड़ी दया है।

वह दयालु भी है

परमात्मा सभी पर दया करता है। दया और क्षमा में अन्तर है। पापी को छोड़ देना क्षमा है। किसी पर कृपा करने को दया कहते हैं। किसी के दुःख को देखकर सहानुभूति करने वाला दयालु कहलाता है।

कई लोग कहते हैं कि दया और न्याय दोनों गुण ईश्वर में साथ-साथ कैसे रह सकते हैं? वास्तव

में दया और न्याय दोनों साथ-साथ ही रहते हैं। अन्तर केवल यह है- 'दया' दयालु ईश्वर अपनी तरफ से करता है और 'न्याय' वह जीवों के कर्म के अनुसार करता है। जैसे किसान ने खेत में दाना बोया,उस एक दाने की एवज में सैकड़ों दाने भगवान ने उसे दिये। यह उसकी 'दया' है अब न्याय उसका यह है, जैसा तुमने बोया,वैसा ही काटोगे। जैसा करोगे वैसा ही भरोगे। चना बोकर चना ही प्राप्त हो सकता है, गेंहूँ नहीं। यही उसका न्याय है।

ईश्वर अजन्मा है

ईश्वर सदा से है और सदा रहेगा, फिर उसका अवतार कैसे हो सकता है? वह सर्वव्यापक है, सर्वत्र विद्यमान है, फिर उसका अवतार-उतरना कैसे सम्भव हो सकता है, क्योंकि वह जन्म-मरण के बन्धन से रहित है।

ईश्वर अनन्त है

सूर्य-चन्द्र आदि सबका आरम्भ भी है और अन्त भी है,परन्तु ईश्वर का न कोई आदि है और न अन्त है। वह सर्वत्र व्याप्त है। अतः वह अनन्त है।

ईश्वर निर्विकार है

ईश्वर जागरित, सुषुप्ति, बन्ध-मोक्ष आदि अवस्थाओं में नहीं आता, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, वह सदा एक रस रहता है। संसार के पदार्थ बदलते रहते हैं। परन्तु ईश्वर कभी नहीं बदलता।

ईश्वर सृष्टि रचयिता है

सृष्टिकर्ता का अर्थ है-समस्त संसार को रचने वाला। वह अपनी शक्ति से संसार को बनाता है। सूर्य, चन्द्र, जल, वायु, अग्नि तथा भूमण्डल को उसी ने रचा है। जैसे आत्मा शरीर का संचालन करता है, इसी प्रकार परमात्मा ब्रह्माण्ड के कण-कण में निवास करता है और उसका निर्माण करने वाला है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय परमात्मा के ही अधीन है।

ईश्वर पापों को कभी क्षमा नहीं करता

मेरे मित्रो और माताओ! हमारे कुछ भाई मानते हैं कि ईसा या मुहम्मद पर ईमान लाने से परमात्मा सारे पापों को क्षमा कर देता है, या गंगा में नहाने से अथवा अन्य किसी कर्मकाण्ड से पाप क्षमा हो जाते हैं, उनका फल नष्ट हो जाता है। लेकिन ऐसा नहीं है, क्योंकि यदि परमात्मा पापों को क्षमा कर दिया करे तो उसका न्याय ही नष्ट हो जावेगा। साथ ही क्षमा की आशा में पापी निर्भयता से अधिक-अधिक पाप करेंगे। **इसलिए सत्य यही है कि परमात्मा कर्मानुसार फल देता है, पापों को क्षमा नहीं करता।**

स्तुति प्रार्थना और उपासना किसकी करें?

मित्रो! स्तुति, प्रार्थना और उपासना सदैव श्रेष्ठ की ही की जाती है श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो कि गुण-कर्म स्वभाव और सत्य व्यवहारों में सबसे अधिक हो। **उन सब श्रेष्ठों में भी जो**

सर्वश्रेष्ठ है-उसको परमात्मा कहते हैं। जिस प्रकार परमेश्वर के सत्य, न्याय, दया, सर्वज्ञता आदि अनन्त गुण हैं वैसे किसी जीव या जड़ पदार्थ में नहीं हैं। इसलिए हम सभी को ऐसे ही परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए।

उपासना की तैयारी

बन्धुओं! उपासना की तैयारी (प्रारम्भ) यमों और नियमों के सम्यक् पालन से होती है।यमों के संबंध में योग दर्शनकार लिखता है।

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाःयमाः।१।। यो.द.समाधि पाद ३०।।

अर्थात् अहिंसा,सत्य,अस्तेय,ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-पांच यम हैं।

इसी प्रकार नियमों के सम्बन्ध में योगदर्शनकार लिखता है

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः।२।। यो.द.समाधि पाद ३२।।

अर्थात् शौच,सन्तोष,तप,स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम हैं।

इन यमों और नियमों का साथ-साथ अभ्यास करना चाहिए। इनके सम्यक् पालन अर्थात् अभ्यास से ही उपासना प्रारम्भ होती है। **स्मरण रखना चाहिए कि अष्टांग योग ही वह राजमार्ग है, जिस पर चलकर ईशोपासना सम्पूर्ण होती है।**

उपासना का फल

बन्धुओ और माताओ ! जिस प्रकार सर्दी से सताये गये व्यक्ति की सर्दी अग्नि के समीप जाने से समाप्त हो जाती है,ठीक उसी प्रकार जीव के सारे दुःख,क्लेश ईश्वर के समीप जाने से छूट जाते हैं । सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह (जीव) ईश्वर के गुण-कर्म स्वभाव के समान पवित्र गुण कर्म स्वभाव वाला हो जाता है। दूसरा लाभ यह है कि उसका आत्म बल इतना बढ़ जाता है कि वह असाधारण विपत्तियों से भी घबड़ाता नहीं है। यही उपासना की फल-श्री है। क्या यह कम है?

ईश्वर और जीव

मान्य बन्धुओ और माताओ!अब मैं ईश्वर और जीव के मध्य क्या सम्बन्ध है-इस विषय पर कुछ विचार सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर आपके समक्ष रखता हूँ।

जीव स्वतन्त्र है या परतन्त्र ?

अपने कर्त्तव्य कर्मों में जीव स्वतन्त्र है लेकिन ईश्वरीय व्यवस्था में कर्म-फल भोगने में परतन्त्र है। यदि जीव अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र न हो तो उसे पाप पुण्य के फल भी कभी प्राप्त नहीं हो सकते। जिस प्रकार सैनिक सेनाध्यक्षों की आज्ञा से सैकड़ों व्यक्तियों को मारकर अपराधी नहीं होते

उसी प्रकार परमात्मा की प्रेरणा से यदि जीव कर्म करे तो पाप-पुण्य परमात्मा को ही लगने चाहिए। इससे सिद्ध है कि जीव सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में स्वतंत्र है लेकिन परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार फल भोगने में परतन्त्र है।

दोनों में समान गुण

जीव और ईश्वर दोनों चेतन हैं। दोनों का स्वभाव पवित्र है,दोनों अविनाशी हैं तथा धार्मिकता आदि गुणों से युक्त हैं।

दोनों में परस्पर भेद

बन्धुओ! दोनों में कुछ भेद इस प्रकार हैं:-

१. सृष्टि की उत्पत्ति,स्थिति और प्रलय करना, उसको नियम में रखना,तथा जीवों को पाप-पुण्य के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म परमेश्वर के हैं तथा जीव के सन्तानोत्पत्ति,उनका पालन-पोषण तथा शिल्प-विद्या आदि अच्छे और बुरे कर्म हैं।

२. ईश्वर के नित्य ज्ञान,आनन्द और अनन्त बल आदि गुण हैं तथा जीव के इच्छा,द्वेष,सुख तथा दुःख आदि गुण हैं।

३. जीव अल्प परिमाणी तथा अल्पज्ञ है और ब्रह्म सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ है।

४. ब्रह्म नित्य शुद्ध,नित्यबुद्ध और नित्यमुक्त स्वभाव है तथा जीव कभी बद्ध होता और कभी मुक्त होता है।

५. ब्रह्म सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होने से उसे कभी भ्रम वा अविद्या नहीं हो सकती,परन्तु जीव को कभी तो विद्या और कभी अविद्या होती है।

६. ब्रह्म जन्म मरण के दुःख को कभी प्राप्त नहीं होता और जीव प्राप्त होता है।

जीव और ईश्वर का परस्पर सम्बन्ध

जिस स्थान में एक वस्तु होती है उस स्थान में दूसरी वस्तु नहीं रह सकती । इसलिए जहां जीव है वहां ईश्वर की सत्ता कैसे हो सकती है? इसका उत्तर यह है कि यह नियम समान आकार वाले पदार्थों में घट सकता है, असमान आकार वाले पदार्थों में नहीं। जैसे लोहा-स्थूल और अग्नि सूक्ष्म होती है इसलिए लोहे में विद्युत रूपी अग्नि व्यापक होकर रहती है। इसी प्रकार चूँकि जीव परमेश्वर से स्थूल और परमेश्वर जीव से सूक्ष्म है इसलिए परमेश्वर व्यापक है,और जीव व्याप्य। अतः ये दोनों एक ही आकाश में रह सकते हैं।

वेद भाष्य

मित्रो और माताओ ! ईश्वर के विषय में संक्षेप में उपर्युक्त विचार करने के साथ ही एक प्रश्न हमारे सामने उभर कर आता है कि ईश्वर की सत्ता और उसके स्वरूप को बताने वाले तो अनेक ग्रन्थ हैं। उनमें से किसी में ईश्वर को चौथे आसमान पर बताया गया है तो किसी में सातवें आसमान पर और

किसी के अनुसार ईश्वर क्षीर सागर में शयन करता है। इनमें से किसी ग्रन्थ का विचार है कि जब जब संसार में पाप अधिक हो जाता है तो परमात्मा स्वयं जन्म या अवतार लेता है, किसी की मान्यता है कि परमात्मा देवदूत-फरिश्ते या पैगम्बर भेजता है, तो किसी ग्रन्थ का कहना है कि परमात्मा ने अपने इकलौते पुत्र को भेजा जिससे वह सबके पापों की पोटली सिर पर रखकर स्वयं सूली पर चढ़ गया आदि। ऐसी स्थिति में ईश्वर और उसके स्वरूप के विषय में किस ग्रन्थ के विचार को ठीक समझा जावे?

मित्रो! इस प्रश्न के उत्तर में हमारा निवेदन है कि जैसे एक राजा अपने राज्य के संचालन के लिए कुछ नियम बनाता है जिसे उस राज्य का संविधान या कानून संहिता कहते हैं। हम सभी जानते हैं कि यह संविधान आरम्भ में ही बनाता है। ठीक उसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में परमपिता परमात्मा अपने इस सृष्टि-शासन के संचालन के लिए भी कानून संहिता या संविधान का निर्माण **करता है। ईश्वर के इसी ज्ञान या संविधान का नाम है-वेद।**

वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों?

पर यहां एक दूसरा प्रश्न हो सकता है कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान या प्रभु का संविधान क्यों? जिन्दावस्था-कुरान-पुराण-बाइबिल आदि क्यों नहीं? इस प्रश्न के उत्तर में अति संक्षेप में हमें कहना है कि ईश्वरीय ज्ञान की कुछ कसौटियां हैं। पहली यह कि ईश्वरीय ज्ञान **सृष्टि के आरम्भ में** होगा। दूसरी यह कि **वह पूर्ण होगा-अधूरा नहीं,** तीसरी यह कि **वह बुद्धि और तर्क संगत होगा।** चौथी यह कि वह **सृष्टि नियमों और विज्ञान के अनुकूल होगा।** पांचवी यह कि उसमें किसी **देश विशेष का भूगोल नहीं होगा।** छठी यह कि **उसमें कोई लौकिक इतिहास नहीं होगा।** सातवीं यह कि वह **किसी देश विशेष की भाषा में नहीं होगा।** आठवीं यह कि उसमें सभी **सत्य विद्याओं का समावेश होगा।**

मित्रो! **इन कसौटियों पर केवल और केवल वेद ही खरा उतरता है।** वेद का ज्ञान सार्वभौमिक और सार्वकालिक है, उसमें उक्त सभी विशेषतायें हैं। वेद विश्व के पुस्तकालय का प्राचीनतम ग्रन्थ है। अन्य सभी ग्रन्थों की आयु महाभारत काल के बाद की केवल साढ़े चार हजार वर्ष तक है, जबकि सृष्टि को बने लगभग २ अरब वर्ष होते हैं। अब यह सिद्ध होने पर कि वेद ही एक मात्र ईश्वरीय ज्ञान है, वेद सम्बन्धी कुछ अन्य बिन्दुओं पर भी विचार करते हैं।

चारों वेदों का कर्त्ता ईश्वर

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद-इन चारों वेदों का रचयिता ईश्वर है। अथर्ववेद काण्ड १० का निम्न मंत्र इस कथन की पुष्टि करता हैः-

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः। अ १०।७।२०।।

अर्थात् जिससे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद प्रकट हुए वह सारे संसार का आधार है।

वेदों का ज्ञान किन्हें दिया गया?

परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ऋग् यजु साम और अथर्व नाम से चारों वेदों को मनुष्य जाति के हितार्थ अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामधारी ऋषियों के अन्तःकरण में प्रकट किया।

वेद स्वतः प्रमाण क्यों हैं?

मेरे मित्रो, और माताओ! वेदों के स्वतः प्रमाण होने के सम्बन्ध में स्वामी जी लिखते हैंः-

'वेद ईश्वर के रचे हुए हैं और ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वविद्यायुक्त तथा सर्वशक्ति वाला है, इस कारण से उसका कथन ही निर्भ्रम और प्रमाण के योग्य है, और जीवों के बनाये ग्रन्थ स्वतः प्रमाण के योग्य नहीं होते क्योंकि वे (जीव) सर्व विद्या युक्त और सर्वशक्तिमान् नहीं होते। इसलिए उनका कहना स्वतः प्रमाण के योग्य नहीं हो सकता।

वेदों का ज्ञान नित्य है

जिस प्रकार वर्तमान सृष्टि में शब्द, अक्षर, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में हैं उसी प्रकार पहले भी थे और आगे भी रहेंगे क्योंकि जो ईश्वरीय ज्ञान होता है वह सदैव एक रहता है अर्थात् उसमें एक भी अक्षर का हेर-फेर नहीं होता है। इसी कारण वेदों का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान होने से नित्य है।

क्या वेद में इतिहास है?

मेरे मित्रो! जिस किसी का भी इतिहास लिखा जाता है वह उसके जन्म के पश्चात् ही लिखा जाता है और वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् ही लिखा जाता है । चूँकि वेदों की रचना सृष्टि के आदि में हुई, अतः उनमें किसी के इतिहास के होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रत्येक मन्त्र के साथ ऋषि क्यों लिखा होता है?

इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने इसी समुल्लास में लिखा हैः-

'जिस-जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस ऋषि को प्रथम हुआ हो जिसके पहिले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था उन्होंने किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिए अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिख आता है, जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावे, उनको मिथ्यावादी समझें, वे तो मन्त्रों के अर्थ के प्रकाशक हैं।

ऋषियों को वेदों के अर्थ किसने और कैसे बताये?

मेरे मित्रो,स्वामी जी अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के इसी समुल्लास में इस प्रश्न का निराकरण करते हुए लिखते हैं-

'परमेश्वर ने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब जब जिस-जिस के अर्थ जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए, तब-तब परमात्मा ने सभी

इष्ट मन्त्रों के अर्थ जताये। जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाये, उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद (है) उनका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ।

वेद संस्कृत भाषा में क्यों?

प्यारे मित्रो और माताओ! यदि परमात्मा वेदों को किसी देश-विदेश की भाषा में प्रकाशित करता तो वह पक्षपाती हो जाता क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाशित करता उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने में होती। **वेदों की भाषा किसी देश-विशेष की भाषा नहीं है वरन् सभी भाषाओं की मूल है।** इसलिए वेद को संस्कृत में प्रकाशित किया है। यह भी स्मरणीय है कि सृष्टि के आरम्भ में जब वेदों का प्रकाश हुआ तब कोई भाषा पृथ्वी पर होने का प्रश्न नहीं है। **वेदभाषा ही वह प्रथम भाषा है जो प्रभु ने मानव को दी।** यह भी ध्यान रहे कि वेद की संस्कृत लौकिक संस्कृत से भी भिन्न है।

आज की इस पुण्य पावनी कथा को सुनकर सभी श्रोता आत्म विभोर हो रहे थे। कल की कथा में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय पर विचार करते हुए ईश्वर महिमा का चिन्तन किया जायेगा ऐसी घोषणा करते हुए तथा श्रोताओं का धन्यवाद करते हुए सत्यपाल ने आज की कथा को शान्ति पाठ के साथ विराम दिया।

आठवां दिन

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय

आज मौसम बड़ा सुहावना है। सभी श्रोता ऐसे सुहावने मौसम का आनन्द लेते हुए मुखियाजी की चौपाल पर नित्य की भांति एकत्रित हो चुके हैं। सत्यपाल ने भी अपना स्थान ग्रहण करते हुए ठीक समय पर आज की कथा को आरम्भ किया।

आदरणीय गुरुजनों,मित्रो और माताओ! ईश्वर के अस्तित्व, उसके स्वरूप, उसके वेद ज्ञान और उसके रचना कौशल पर विचार करने के क्रम में ही ईश्वर के कार्य **'जन्माद्यस्ययतः'** अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के प्रकरण पर महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में विचार किया है।

बन्धुओ, यह सारा संसार जगत् की उत्पत्ति से पूर्व अर्थात् प्रलयावस्था में अन्धकारमय था।(५) उस समय पृथिवी, आकाश, द्युलोक न थे न सूर्यादि कोई पदार्थ,मनुष्य, कीट पतंग आदि-प्राणि जगत् भी उस समय न था। जैसाकि ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में लिखा हैः

तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रेप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।' ऋ० १०।१२६।३।।

अर्थात् सर्वत्र अन्धकार था और सब कुछ अन्धकारमय था।

अवर्णनीय प्रकृति सर्वत्र थी। ठीक इसी बात को महर्षि दयानन्द मनुस्मृति के आधार पर लिखते हैंः-

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः। मनु०।।१।५।।

यह सब जगत् सृष्टि के पहले महाप्रलय काल में अन्धकार से आवृत्त-आच्छादित था। उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था।(सब ओर से सोया पड़ा था)।

प्रकृति की इस प्रलयावस्था में ईश्वर, जीव और प्रकृति-ये तीन पदार्थ वर्तमान थे, चूँकि तीनों पदार्थ अनादि और अनन्त हैं। इस कथन की पुष्टि ऋग्वेद का निम्न मन्त्र इस प्रकार करता हैः

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति।। ऋ०।।१।१६४।२०।।

इस मन्त्र में दो सुपर्णों द्वारा जीव और ब्रह्म का वर्णन किया गया है और वृक्ष द्वारा प्रकृति का। प्रकृति रूपी एक अनादि वृक्ष है जिस पर दो पक्षी अनादि काल से मित्र रूप में बैठे हैं। एक पक्षी (जीवात्मा) तो उस वृक्ष के फलों को खाता है जबकि दूसरा पक्षी (परमात्मा) केवल साक्षी रूप में देखता है।

---

(५) ठीक इसी बात को प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंगटन 'Expending Universe' नामक पुस्तक में लिखते हैं :- Undifferenciated sameness which could not be at all distinguished अर्थात् प्रकृति की उस समय की अवस्था निर्भेद्य और निर्विशेष थी।

जगत्-उत्पत्ति के तीन कारण

जगत् की उत्पत्ति के तीन कारण हैं। एक निमित्त कारण,दूसरा उपादान कारण और तीसरा साधारण कारण। निमित्त कारण उसे कहते हैं जिसके कि बनाने से कुछ बने,न बनाने से कुछ न बने,तथा आप स्वयं बने नहीं और प्रकारान्तर से दूसरों को बना दे। यह निमित्त कारण दो प्रकार का होता है,एक मुख्य और दूसरा गौण। सृष्टि को कारण से बनाने,उसकी स्थिति तथा प्रलय करने और उस सबकी व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा है। तथा सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध वस्तुयें बनाने वाला गौण निमित्त कारण जीव है।

दूसरा कारण उपादान कारण है। उपादान कारण उसे कहते हैं जिसके कि बिना कुछ बने नहीं तथा अवस्थान्तर होकर बिगड़े और बने। जगत् का उपादान कारण प्रकृति है। इसे संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। यह जड़ होने से आप न संसार रूप में परिणित हो सकती है और न संसार रूप से प्रलय रूप में आ सकती है। किन्तु परमात्मा के प्रयत्न द्वारा ही यह कार्यो को करती है। कहीं कहीं जड़ से जड़ बन और बिगड़ भी जाते हैं,जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ पदार्थ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं। परन्तु वह भी ईश्वर के बनाये नियमों के अधीन हैं तथा उनका नियमपूर्वक बनना या बिगड़ना परमेश्वर और जीव के अधीन है।

जगत् की उत्पत्ति में तीसरा कारण है-साधारण कारण। साधारण कारण उसे कहते हैं जो कि बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। जगत् के बनाने में परमात्मा का ज्ञान,दर्शन और बल तथा दिशा-काल व आकाशादि ये सब साधन तथा साधारण निमित्त कारण हैं।

परमात्मा और जगत् में भेद

कई लोग कहते हैं जगत् परमात्मा से बना है जैसे कि घड़ा मिट्टी से बनता है। परन्तु यह बात ठीक नहीं। क्योंकि घड़ा मिट्टी से बनता है तो घड़े में मिट्टी के गुण-धर्म भी आ जाते हैं। इसी कारण जगत् यदि परमात्मा का विकार होता तो जगत् में भी परमात्मा के गुण धर्म होते। परन्तु जगत् में ईश्वर के गुण धर्म नहीं हैं,क्योंकि

१. ईश्वर सत्,चित् और आनन्द स्वरूप है परन्तु जगत् कार्य रूप से असत् अर्थात् सदा न रहने वाला,जड़ और आनन्द रहित है।
२. ईश्वर अज अर्थात् उत्पन्न नहीं है और जगत् उत्पन्न हुआ है।
३. ईश्वर अदृश्य है और जगत् दृश्य।
४. परमात्मा अखण्ड है और जगत् के खण्ड हो सकते हैं।
५. ईश्वर विभु है और जगत् परिछिन्न।

सृष्टि रचना का उद्देश्य

यह सृष्टि क्यों बनाई गई है? इस संबंध में वैदिक धर्म स्पष्ट कहता है कि यह सृष्टि जीवों को कर्म फल प्रदान करने के लिए बनाई गई है जैसा कि यजुर्वेद अध्याय २३ के ६३ वें मन्त्र में लिखा हुआ है। क्योंकि जीव बिना शरीर के कोई कर्म नहीं कर सकता,इसलिए ईश्वर ने जीवों को शरीर तथा इन्द्रियां

प्रदान कीं और फिर इन्द्रियों की सहायता के लिए सृष्टि को उत्पन्न किया जैसे आंख की सहायता के लिए सूर्य और कान की सहायता के लिए आकाश। दूसरा कारण सृष्टि रचना का यजुर्वेद अध्याय ३१, मन्त्र २ में दिया है जहां बतलाया गया है कि अमरत्व अर्थात् मोक्ष को पाने के लिए जीवात्माओं के लिए सृष्टि बनाई गई है। सृष्टि की रचना का तीसरा कारण यह भी है कि परमात्मा के स्वाभाविक गुण अर्थात् न्याय,दया,वात्सल्य तथा परोपकार आदि भी,जगत् की रचना करने पर ही सफल हैं, अन्यथा नहीं।

सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम

बन्धुओं! जब परमात्मा ने प्रकृति को संचालित किया तब वस्तुओं के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से आकाश पैदा हुआ क्योंकि इसके बना आकाश नहीं हो सकता। जब आकाश हुआ तब उसमें वायु संचारित हुई। वायु के संचारण से अग्नि परमाणु एकत्रित हो गये,अग्नि परमाणुओं के एकत्रित होने से जल-परमाणुओं के मध्य की रुकावट दूर हुई। जल-परमाणुओं के एकत्रित होने से पृथ्वी के परमाणु एकत्रित हो गए। इसी प्रकार सृष्टि उत्पन्न हुई।

कल्पान्तर में सृष्टि एक जैसी ही उत्पन्न होती है।

बन्धुओं!यह सृष्टि जैसी कि अब है वैसी ही पहिले थी और आगे भी होगी। इसमें भेद नहीं होता। इस संबंध में वेद कहता है-

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।। ऋ०।१०।१९०।३।।

इसका अभिप्राय यह है कि परमेश्वर ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य,चन्द्र विद्युत,पृथिवी तथा अन्तरिक्ष आदि बनाए थे,वैसे ही उसने अब भी बनाये हैं और आगे भी ऐसे ही बनायेगा। क्योंकि परमेश्वर सर्वज्ञ है,उसके काम बिना भूल-चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं और जो अल्पज्ञ है अर्थात् जिसके ज्ञान में वृद्धि तथा क्षय होता रहता है उसी के कामों में भूल-चूक होती है ईश्वर के कामों में नहीं। अतः सृष्टि प्रत्येक कल्प में एक-सी ही रहती है।

सृष्टि प्रवाह से अनादि है

मेरे मित्रो, माताओ और बुजुर्गों ! जैसा कि मैंने अभी वेद मन्त्र के आधार पर यह बताने का यत्न किया कि यह संसार पहली बार ही नहीं बना, वरन् पहिले भी बनता रहा है। जैसे दिन के पश्चात् रात और रात के बाद दिन होता है वैसे ही सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि होती है। अर्थात् सृष्टि प्रवाह से अनादि है।[६]

मनुष्य सृष्टि

प्रारम्भ में मनुष्यों की सृष्टि अमैथुनी होती है और आदम की तरह केवल एक मनुष्य नहीं

---

[६] "The Hindu doctrine of the recurrent dissolutions and creations of the earth, which we are accustomed to attitude to mere facny may proved to be based upon solid foundations."

अर्थात् हिन्दुओं का यह सिद्धान्त कि पृथ्वी बार-बार नष्ट और उत्पन्न होती है जिसको कि हम अब तक केवल कल्पना समझते रहे हैं, किसी दृढ़ आधार पर आश्रित मालूम होता है - प्रसिद्ध विद्वान् स्टेन्ज

वरन् अनेक स्त्री-पुरुष युवावस्था में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अगर वृद्ध हों तो आगे सन्तान न चले और अगर बालक हों तो उनका पालन पोषण कौन करे? प्रथम अमैथुनी सृष्टि के बाद फिर तो सृष्टिक्रम चल निकलता है और माता-पिता से सृष्टि होने लगती है।

मनुष्य सृष्टि का आदि स्थान तथा आर्यावर्त

मनुष्यों की आदि सृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत में हुई थी। कालान्तर में इनमें आर्य और दस्यु दो भेद हो गए। श्रेष्ठ,विद्वान् तथा धर्मात्मा मनुष्यों को देव या आर्य कहा जाने लगा दुष्ट,मूर्ख तथा अधर्मात्माओं को असुर या दस्यु । इन आर्यों और दस्युओं में प्रायः लड़ाई,दंगा हुआ करता था। अन्ततः आर्यों ने भारत भूमि को भूगोल में सर्वश्रेष्ठ भूखण्ड जानकर यहां अपना निवास किया। इसीलिए इस भूमि का नाम आर्यावर्त हुआ।

क्या आर्य लोग बाहर से आये थे?

बन्धुओ! सृष्टि रचना,पुनः मनुष्य की उत्पत्ति,मानव सभ्यता का प्रसार,आर्य दस्यु युद्ध,आर्यावर्त की सीमा,भारत देश का प्राचीन नाम,आर्यों का मूल स्थान आदि विभिन्न विषयों की विवेचना करते हुए स्वामी जी इस संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैंः

'किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जंगलियों से लड़कर,जय पाके,निकाल के इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पांडव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा थोड़ा प्रचार आर्यावर्त से भिन्न देशों में भी रहा। अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य,प्रमाद,परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड,स्वतन्त्र,स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है।'

सत्यार्थप्रकाशः स्वराज्य का प्रथम उद्घोषक

बन्धुओ!सत्यार्थ प्रकाश सबसे अधिक महत्व का ग्रन्थ इसलिए है कि इसमें ही सर्वप्रथम 'स्वराज्य'शब्द का उद्घोष हुआ है। स्वराज्य को सुराज्य से अधिक महत्वपूर्ण घोषित करते हुए स्वामी जी लिखते हैंः-

'कोई कितना ही करे किन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है,वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित,अपने और पराये का पक्षपात शून्य,प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता।'

चन्द्र तारा आदि में मनुष्य सृष्टि तथा वैदिक ज्ञान

जैसे इस पृथिवी लोक पर मनुष्य सृष्टि है वैसे चन्द्र और तारा आदि में भी मनुष्य सृष्टि है। परमेश्वर का कोई भी काम जब निष्प्रयोजन नहीं होता तो इतने असंख्य तारा आदि लोक,मनुष्यादि

सृष्टि के बिना सप्रयोजन कैसे हो सकते हैं? इसलिए सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है। यह बात अलग है कि अन्य लोकों में,इस पृथिवी लोक,की अपेक्षा,मनुष्यादि सृष्टि के आकार तथा रूप रंग में कुछ भेद हो। इसी प्रकार जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं वेदों का अन्य लोकों में भी प्रकाश है। जैसे एक राजा की राज्य व्यवस्था की नीति उसके राज्य के सब देशों में समान रूप से होती है, **उसी प्रकार राजराजेश्वर परमात्मा की वेदोक्त नीति उसके सृष्टि रूप राज्य में एक सी है।**

वर्तमान सृष्टि का रचना काल

वर्तमान सृष्टि को बने हुए १,९६,०८,५३,१०६ वर्ष अब तक हुए हैं। अथर्ववेद के 'शतंतेयुतं' इत्यादि मन्त्र में कुल पृथिवी की आयु चार अरब ३२ करोड़ वर्ष की दी हुई,जिसमें से लगभग २ अरब वर्ष बीत चुके हैं ओर शेष दो अरब से अधिक वर्ष अभी बीतने शेष हैं। यही बात मनुस्मृति तथा सूर्यसिद्धान्त के प्रथम अध्याय में भी कही गई है और हर्ष का विषय है कि अनुसंधान करते करते आज पश्चिम के विज्ञानवेत्ता भी इसी परिणाम पर पहुंचे हैं जैसा कि इंग्लैण्ड के सबसे बड़े विज्ञानवेत्ता डॉक्टर जेम्स जीन्स ने अपनी पुस्तक 'Universe around us' में यूरेनियम के प्रयोग से सिद्ध किया है कि इस पृथ्वी को बने लगभग २ अरब वर्ष हो चुके हैं।

पृथिवी द्वारा सूर्य की परिक्रमा

बन्धुओ! पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है। यजुर्वेद के अध्याय तीन का छठा मंत्र इस कथन की पुष्टि इस प्रकार करता है-

आयं गौःपृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः।।

इसका अर्थ यह है कि यह पृथिवी जलसहित सूर्य के चारों ओर घूमती है। इस मन्त्र में पृथिवी का नाम गौ आया है ओर गौ का अर्थ है घूमने वाली। पृथिवी का यह घूमना सूर्य की आकर्षण शक्ति के कारण है।

पृथिवी का धारण कौन करता है?

पृथिवी सूर्य की आकर्षण शक्ति से स्थित है- इस कथन की पुष्टि वेद इस प्रकार करता हैः-

'उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम्'(ऋग्वेद)

अर्थात् सूर्य ने अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा पृथिवी को धारण किया हुआ है। लेकिन इन सूर्य,पृथिवी आदि सबको अन्त में धारण करने वाला परमात्मा ही है। जैसा कि यजुर्वेद में कहा गया है-

सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्।। यजु.१३।४

अर्थात् उस परमात्मा ने ही पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक का धारण किया हुआ है।

मेरे मित्रो, माताओ और बुजुर्गों! सृष्टि रचना का यह गूढ़ विषय आशा है आपने समझ लिया होगा क्योंकि मैंने अपनी तरफ से इसे सरल रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अब 'विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष' इस विषय पर कल विचार करेंगे।

नवां दिन

विद्या-अविद्या, बन्ध और मोक्ष

चन्दनपुर गांव के निवासियों की रुचि कथा में निरन्तर बढ़ रही है। सारे गॉव और अड़ोस-पड़ोस के गॉवों में भी इन दिनों सत्यपाल की इस सत्य मूलक पावन कथा की ही चर्चा है। आज कथा का नवां दिन है। समय से पूर्व ही मुखियाजी की चौपाल श्रोताओं से खचाखच भर गई है। ठीक समय पर ईश्वर प्रार्थना के पश्चात् सत्यपाल ने अपनी रसवर्षिणी वाणी का आरम्भ किया।

मेरे आदरणीय गुरुजनों,माताओं और मित्रो! अपने व्यक्तिगत जीवन को शरीर,मन,बुद्धि और आत्मा को पवित्र बनाते हुए,परिवार-समाज-राष्ट्र और विश्व मानव एवं प्राणिमात्र के प्रति कर्त्तव्य पालन करते हुए इस सृष्टि के करने वाले और नियामक ईश्वर की महिमा और उसके स्वरूप से परिचय प्राप्त कर ईश्वरीय ज्ञान वेद के प्रकाश में किस प्रकार हम उसकी उपासना करें यह हम अब तक संक्षेप में विचार कर चुके हैं।

बन्धुओ,हम विचार कर चुके हैं कि तीन अनादि सत्तायें हैं- ईश्वर,जीव और प्रकृति। ईश्वर सत्+चित्+आनन्द-सच्चिदानन्द है। जीवात्मा के पास आनन्द या शान्ति का अभाव है,इसी शान्ति को पाने के लिए जीवात्मा की जन्म-जन्मान्तर से यात्रा चल रही है। यह निश्चित है कि एकमात्र परमात्मा की उपासना या सानिध्य में इस शान्ति या आनन्द की अनुभूति ही मोक्ष है,इसके विपरीत बार-बार जन्म मरण के चक्र में घूमना ही बन्धन है।

ईश्वर के सत्य स्वरूप और मोक्ष के सत्य स्वरूप के साथ ही ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष के सत्य साधनों का ठीक-ठीक ज्ञान ही विद्या है और इससे विपरीत ज्ञान अविद्या है जो बन्धन का हेतु है। आज हम सत्यार्थ प्रकाश के नवें समुल्लास के आधार पर इसी विषय पर संक्षेप से विचार करेंगे।

विद्या और अविद्या

बन्धुओ!पवित्र यजुर्वेद के अनुसार अविद्या नाम है कर्मोपासना का,जिससे मृत्यु (दुःख) को तरा जा सकता है यदि वे पवित्र हों और विद्या कहते हैं यथार्थ के ज्ञान को जिससे मोक्ष पाया जाता है। योग-दर्शन के अनुसार 'अनित्य,अशुचि,दुःखमय और आत्मारहित तत्वों में नित्यता,शुचिता,सुखमयता और आत्मवत् व्यवहार करना अविद्या है,जो इस अविद्या या अज्ञान में फंसा रहता है और इसीलिए अधर्म पर चलता है,उसे मोक्ष या मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

मुक्ति और बन्ध के कारण

बन्धुओ! दुःखों से छूट जाने को मुक्ति कहते हैं । परमेश्वर की आज्ञा पालने,अधर्म अविद्या,कुसंग,कुसंस्कार तथा बुरे व्यसन से अलग रहने,सत्यभाषण,परोपकार,विद्या,पक्षपात रहित न्याय तथा धर्म की वृद्धि करने, परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने,विद्या पढ़ने और पढ़ाने तथा धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञानोन्नति करने-इत्यादि शुभ साधनों से मुक्ति होती है और इनसे विपरीत साधनों अर्थात् ईश्वर की आज्ञा को भंग करने आदि कामों से बन्ध होता है।

मुक्त जीव की अवस्था

जीव मुक्त होकर ब्रह्म में ही रहता है और ब्रह्म के सर्वव्यापक होने से बिना रुकावट विज्ञान

और आनन्द पूर्वक सब जगह विचरण कर सकता है। मुक्तावस्था में संकल्प-सत्यादि-स्वाभाविक गुण उसमें बने रहते हैं। वह जिस बात की भी इच्छा करता है, संकल्प मात्र से ही उसे भोग लेता है। जीव की ऐसी शक्तियाँ,बल,पराक्रम,आकर्षण,प्रेरणा,गति,विवेचन,क्रिया आदि के रूप में चौबीस गिनाई गई हैं,जिनसे, मुक्त होकर भी वह आनन्द की प्राप्ति और भोग को भोगने में समर्थ होता है। अतः मुक्ति का अर्थ जीव का विनाश या ब्रह्म बन जाना नहीं,बल्कि दुःखों से छूट कर आनन्दस्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर में आनन्द भोगना है।

मुक्ति से पुनरावृत्ति

बन्धुओ! मुक्ति के संबंध में एक सर्वथा तर्क पूर्ण सिद्धान्त स्वामी दयानन्द ने इस समुल्लास में प्रतिपादित किया है। उनका कथन है कि जब मुक्ति के लिए मनुष्य का पुरुषार्थ और उसके साधन भी सीमित और परिमित हैं तो उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है? इस प्रकार यह स्वीकार करना होगा कि मुक्त जीव एक निश्चित अवधि पर्यन्त मोक्ष सुख को भोगता है। तत्पश्चात् वह पुनः संसार में जन्म लेता है। इस विचार की पुष्टि ऋग्वेद का निम्न मन्त्र इस प्रकार करता हैः-

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च।। ऋग्वेद,१।२४।२।।

इस स्वप्रकाशस्वरूप,अनादि तथा सदा से मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो कि हमको मुक्ति में आनन्द की अनुभूति करा पृथिवी पर, पुनः माता-पिता द्वारा जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है।

मुण्डकोपनिषद् भी उक्त व्यवस्था का समर्थन इस प्रकार करता हैः-

ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे। मुण्डक. ३.२.६

'वे मुक्तजीव मुक्ति को प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं।'

अतः स्पष्ट है कि जीवात्मा,परमात्मा की व्यवस्था द्वारा मुक्ति से अवश्य लौटता है ।

मुक्ति का समय

मेरे मित्रो और माताओ ! मुक्ति का यह सब सुख परान्त काल (७) तक अर्थात् छत्तीस हजार बार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय तक निरन्तर रहता है। यह काल कोई कम नहीं है कि इतने काल पर्यन्त निरन्तर सुख के लिये कोई यत्न न किया जाय। संसार में क्षणिक सुखों के लिये भी जब हम दिन-रात लगे रहते हैं तो इतने बड़े काल के सुख के लिये हमें विशेष यत्न करना चाहिए।

मुक्ति एक जन्म में या अनेक जन्म में

जीव विभिन्न योनियों में अपने पाप पुण्य के अनुसार जन्म लेता रहता है। जब उसके बन्धन-कारक कर्म समाप्त हो जाते हैं तो उसे मोक्ष प्राप्त होता है । इस संबंध में मुण्डकोपनिषद् का वचन प्रमाण है

(७) सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में इसकी गणना इस प्रकार की गई है - ४३२०००० वर्ष एक चतुर्युगी। २००० चतुर्युगी -एक अहोरात्र। ऐसे ३० अहोरात्र-एक मास। ऐसे १२- मास एक वर्ष, ऐसे १०० वर्ष - एक परान्त काल।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे।। मु०।२.२.८।

जब इस जीव के हृदय की अविद्या या अज्ञान रूपी गांठ कट जाती है, सब संशय छिन्न होते व दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं, तभी उस परमात्मा,जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप्त है,उसमें निवास करता है,के दर्शन होकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त

बन्धुओ! जगत् के सभी प्राणियों में नाना प्रकार की विषमताओं के देखने से ज्ञात होता है कि जीव के जन्म अनेक होते हैं। यदि इनका पुनर्जन्म न माना जाय,तो वर्तमान जन्म में इतनी भारी विषमताओं का कारण समझ में नहीं आता। कोई सुखी,कोई दुःखी, कोई जन्म से राज-सुखों को भोगता और कोई जन्म से ही महादरिद्री,कोई बुद्धिमान् और कोई मूर्ख,कोई शरीर से हृष्ट पुष्ट और कोई निर्बल इत्यादि विषमताओं का समाधान बिना पूर्व-जन्मों के नहीं हो सकता। इसलिए यह मानना ही पड़ेगा कि पूर्व जन्म के पाप-पुण्यों के अनुसार भविष्यत् में जन्म होते हैं। इस प्रकार जीवात्मा के अनेक जन्म सिद्ध होते हैं।

विभिन्न योनियों की प्राप्ति

जीव अपने कर्मों के अनुसार परमात्मा की व्यवस्था में कभी पुरुष के शरीर में,कभी स्त्री के शरीर में,कभी पशु,कीट और पतंग आदि के शरीर में जाता है। जब उसके द्वारा कृत पाप बढ़ जाता है और पुण्य कम हो जाता है तब जीव पशु आदि नीचे शरीरों में जाता है। जब धर्म अधिक और अधर्म कम होता है तब देव अर्थात् विद्वानों के शरीर को धारण करता है,जब पाप-पुण्य बराबर होता है तब साधारण मनुष्य का जन्म होता है। इन साधारण मनुष्यों में भी जो सुख-दुःख की मात्रा का अन्तर दिखाई देता है वह भी उनके कर्मों की उत्तमता मध्यमता और निकृष्टता की अपेक्षित मात्रा के अनुसार ही है। जब अधिक पाप का फल पशु आदि के शरीर में भोग लिया जाता है तब पाप और पुण्य के तुल्य हो जाने पर वह जीव पुनः मनुष्य शरीर में आता है।

इसी प्रकार अधिक पुण्य के कारण पुण्यात्मा मनुष्य के शरीर को धारण कर और पुण्य के फल को भोग लेने के पश्चात् फिर जीव अपने बचे कर्मों के अनुसार मध्यम कोटि या साधारण कोटि के मनुष्य का जन्म धारण करता है।

इसी प्रकार अपने कर्मों के अनुसार,परमात्मा की व्यवस्था में बंधा हुआ जीव,नाना प्रकार की योनियों में तब तक चक्कर काटता रहता है जब तक कि वह मनुष्य योनि में आकर विद्या के प्रकाश से प्रकाशित हो मुक्त नहीं होता। मुक्त होने पर मुक्ति में परान्त काल तक आनन्द भोग वह पुनः इसी संसार चक्र में आ जाता है, और पुनः यत्न करने पर वह मुक्ति को प्राप्त करता है।

माताओ और सज्जनो! मुक्ति की प्राप्ति केवल मानव योनि में ही सम्भव है। अतः मनुष्य के अमूल्य चोले को पाकर आरम्भ से ही विद्या(सद्ज्ञान-वेद ज्ञान) के प्रकाश में मुक्ति के साधनों का अवलम्बन करना चाहिए। इसी में जीवन की धन्यता है। आज की कथा को हम यहीं विराम देते हैं। शमित्योम्।

दसवां दिन

सदाचार, अनाचार, भक्ष्य और अभक्ष्य

ऋषि दयानन्द प्रणीत सत्यार्थ प्रकाश पर आधारित सत्यपाल की इस पुण्यमयी कथा से चन्दनपुर सचमुच 'चन्दनपुर' बन गया है। उसकी सुगन्धि चारों ओर व्याप रही है। सभी के एकत्रित होने पर यज्ञ,सामूहिक,संध्या और ईश-विनय के बाद सत्यपाल ने बड़ी रसात्मक-वाणी का आरम्भ किया।

मेरे आदरणीय गुरुजनो,माताओ और मित्रो! आपने कुछ दिनों पहले समाचार पत्रों में एक मुसलमान परिवार में जन्मे बालक द्वारा अपने पूर्व जन्म का विवरण बताने का समाचार पढ़ा होगा। ऐसी घटनायें पहले भी अनेकों बार अखबारों में प्रकाशित होती रही हैं। ये प्रत्यक्ष घटनायें जहां पुनर्जन्म के वैदिक सिद्धान्त को सिद्ध करती हैं,वहां जीवात्मा के अस्तित्व और जीवात्माओं की अनेकता को भी बताती हैं। प्रकट है कि जीवात्मा या जीव अनेक हैं और कर्मफल के अधीन अनेक जन्म धारण करते हैं। तब इनको अपनी अटल व्यवस्था के अधीन कर्मफल देने वाली कोई महती,चेतन अदृश्य और सर्वशक्तिमान् सत्ता अवश्य है,उसी का नाम ईश्वर है। फिर जब भोक्ता है तो भोग्य भी स्वाभाविक है। अतः पूर्व जन्म स्मृति की इन घटनाओं से ईश्वर,जीव और प्रकृति ये तीन अनादि और शाश्वत सत्तायें स्वयं सिद्ध हैं।

मित्रो और माताओ! प्रकृति को साधन बनाकर परमात्मा या मोक्ष की प्राप्ति ही जीवात्मा का लक्ष्य है। बस यही इस चारों ओर फैली हुई सृष्टि की रचना का रहस्य है। पिछले नौ दिन की कथा में हमने इसी जीवन लक्ष्य मुक्ति के साधनों के सम्बन्ध में ही क्रमशः विचार किया है। पर यहां हमें यह ध्यान में रखना है। चाहे दिखाने के लिए चारों आश्रमों और वर्ण धर्म का भी पालन करें,चाहे हम पंच महायज्ञ और जप-तप का अनुष्ठान करें,चाहे हम कितना ही वेदपाठ करें तथा अन्य बाह्याचार भी करते रहें पर जब तक सदाचारी नहीं हैं, हमारा आचरण पवित्र नहीं है तब तक **'आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः'** की सूक्ति के अनुसार हम प्रभु के प्यार के पात्र नहीं बनते, हम मोक्ष के अधिकारी नहीं बनते।

माताओ और सज्जनो! लोक को भुलाकर अथवा समाज एवं राष्ट्र की उपेक्षा करके हम परलोक की या मोक्ष की सिद्धि नहीं कर सकते। अतः हमारे खान-पान,रहन-सहन आचार-व्यवहार और शिष्टाचार-सदाचार तथा सामाजिक कर्त्तव्यों से संबंधित छोटी से छोटी और साधारण बातों का हमारे जीवन लक्ष्य की सिद्धि में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है इसी से आचार्यवर ऋषि दयानन्द जी महाराज ने अपने महान् ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के विधेयात्मक भाग या पूर्वार्द्ध के अन्तिम दसवें समुल्लास में इस पर विचार किया है। आयें हम भी आज की कथा में संक्षेप से इस पर विचार करें।

धर्म या सदाचार

बन्धुओ! आचार और धर्म का एक ही अर्थ है। धर्मयुक्त कार्यों का आचरण,सुशीलता,सत्पुरुषों का संग,और सत्य के ग्रहण में रुचि आदि उत्तम कर्मों को सदाचार कहते हैं और इनसे विपरीत कर्मों का अनाचार कहते हैं।

धर्म या सदाचार के लक्षण

मनुस्मृतिकार धर्म (सदाचार) के लक्षण इस प्रकार लिखता हैः-

वेदःस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुःसाक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।२।१२।।

जिस कर्म का सेवन राग और द्वेष से रहित विद्वान् लोग नित्य करें तथा जिसके लिए हृदय अर्थात् आत्मा साक्षी दे कि सत्य है वह धर्म है और माननीय है। वेद और वेदों के जानने वालों द्वारा रचित धर्मशास्त्र,तथा उनके आचार-व्यवहार और आत्मा का सन्तोष ये धर्म या सदाचार में प्रमाण हैं,अर्थात् इन चार लक्षणों द्वारा सदाचार का निर्णय करना चाहिये।

यहां आत्मा के सन्तोष का अभिप्राय यह है कि जिस कर्म के करने में भय,शंका और लज्जा का अनुभव न हो उस कर्म को भी धर्म या सदाचार ही जानना चाहिए। जैसे कि जिस समय कोई मिथ्या भाषण या चोरी आदि की इच्छा करता है तो उसके आत्मा में उसी समय,भय शंका और लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है,इसलिए यह धर्म या सदाचार नहीं। धर्म के ज्ञान का अधिकारी वही है जो कि लोभ और काम अर्थात् विषय सेवन में फंसा हुआ न हो।

मनुष्य के करणीय कर्तव्य

प्रत्येक मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को जो कि विषयों में प्रवृत्त कराती हैं,रोकने का प्रयत्न सदैव उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार सारथि घोड़े को रोक कर उसे शुद्ध मार्ग में चलाता है।

प्रत्येक मनुष्य को नित्य स्नान करना चाहिए वस्त्रों तथा स्थान को सदा शुद्ध रखने के साथ ही खान-पान को शुद्ध रखना चाहिए। इससे चित्त की शुद्धि और आरोग्य प्राप्त होता है। मनुष्य के कुछ आचरणीय कर्त्तव्यों का निरूपण सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने इस प्रकार किया हैः-

'माता,पिता आचार्य और अतिथि की सेवा करना देव-पूजा कहाती है। और जिस-जिस कर्म से जगत् का उपकार हो वह-वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है। कभी नास्तिक,लम्पट,विश्वासघाती, चोर,मिथ्यावादी, स्वार्थी,कपटी,छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करे। आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है।'

विदेश गमन से सदाचार नष्ट नहीं होता

पौराणिक लोगों ने जो यह माना हुआ है कि विदेश गमन से आचार नष्ट हो जाता है-इस सम्बन्ध में स्वामी जी लिखते हैं-

'यह बात मिथ्या है। क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी,सत्य भाष णादि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट न होगा। और जो आर्यावर्त में रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार भ्रष्ट कहावेगा।'

अपने उक्त कथन की पुष्टि में स्वामी जी मनुस्मृति और महाभारत के कुछ प्रमाण देते हुए लिखते हैंः-

'श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल(अमेरिका) में अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं,पर बैठ के पाताल में जाके महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार जिसे 'कंधार' कहते हैं वहां की राजपुत्री से हुआ था,माद्री पाण्डु की स्त्री'ईरान' के राजा की कन्या थी और अर्जुन का विवाह पाताल में जिसको'अमेरिका' कहते हैं वहां के राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था। जो देश देशान्तर,द्वीप-द्वीपान्तर में न जाते होते तो ये सब बातें क्यों कर हो सकतीं? मनुस्मृति में जो समुद्र में जाने वाली नौका पर कर लेना लिखा है वह भी आर्यावर्त से द्वीपान्तर में जाने के कारण है और जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उसमें सब भूगोल के राजाओं को बुलाने या निमन्त्रण देने के लिए भीम,अर्जुन,नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गए थे,जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्यावर्त देशीय लोग व्यापार,राजकार्य और भ्रमण के लिए सब भूगोल में घूमते थे और जो आजकल छूतछात और धर्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है।'

देशाटन के लाभ

देशाटन से होने वाले कुछ लाभों का वर्णन स्वामी जी इस प्रकार करते हैंः-

'जो मनुष्य देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जाने-आने में शंका नहीं करते वे देश-देशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम,रीति भांति देखने,अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचार भ्रष्ट धर्महीन नहीं होते किन्तु देश देशान्तर के उत्पन्न पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानते हैं! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है? **जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देश-देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता। दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं।'**

भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थ

भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थों के सम्बन्ध में स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैंः-

'जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात,छल,कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धिबल पराक्रम वृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि,गोधूम,फल,मूल,कन्द,दूध,घी,मिष्ठादि पदार्थों का सेवन-यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं जिस-जिसके लिए जो-जो पदार्थ वैद्यकशास्त्र में वर्जित किए हैं,उन-उनका सर्वथा त्याग करना और जो-जो जिसके लिए विहित हैं उन-उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

अभक्ष्य पदार्थों का निषेध

'भक्ष्याभक्ष्य' प्रकरण में मनुस्मृतिकार ने कुछ अभक्ष्य पदार्थों का निषेध इस प्रकार किया है-

लशुनं गृंजनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च।५५।।

लहसन,शलगम,प्याज,कुकुरमुत्ता(छत्राक) और इसी प्रकार गन्दे स्थानों से उत्पन्न हुए पदार्थ द्विजों को नहीं खाने चाहिए। द्विज अर्थात् ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य और शूद्रों को भी जमीन विष्ठा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक,फल तथा मूलादि न खाना चाहिए। **इसके साथ ही किसी को भी मद्य(शराब)गांजा,भांग,अफीम आदि नशीले पदार्थों का सेवन कभी न करना चाहिए।**

मांसाहार निषेध

स्वामी जी ने 'भक्ष्याभक्ष्य' प्रकरण के अन्तर्गत मांसाहार का निषेध किया है। इस संबंध में मनुस्मृतिकार लिखता है-

नकृत्वा प्राणिनं हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।

न च प्राणिवधःस्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।५।४८

प्राणियों की हिंसा को बिना किये मांस कहीं नहीं मिलता और प्राणियों का वध स्वर्ग का देने वाला नहीं है। अतः मांस को सर्वथा त्याग देना चाहिए।

'सखरा और 'निखरा' भोजन क्या है?

बन्धुओ!इस संबंध में स्वामी जी अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं-

'सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते और जो घी-दूध में पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है,क्योंकि जिसमें घी-दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिए यह प्रपंच रचा है,नहीं तो **अग्नि आदि से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पक्का हुआ कच्चा है।** जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं। क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

अपने हाथ की रसोई

इसी प्रकार भारत वर्ष में अपने हाथ के बनाए भोजन के खाने का भी भ्रम फैला हुआ है। द्विज लोगों को शूद्र के हाथ का बनाया भोजन करना चाहिये और इस प्रकार बचे हुए अपने समय को विद्या पढ़ने,राज्य के पालने तथा पशुपालन,खेती और व्यापार के कार्यों में लगाना चाहिए। इस संबंध में आपस्तम्ब-धर्मसूत्र का निम्नलिखित प्रमाण देते हुए स्वामी जी लिखते हैं-

आर्याधिष्ठाता वा शूद्राःसंस्कर्तारःस्युः।। २.२.३.४।।

'आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि

से पवित्र रहें। आर्यों के घर में जब रसोई बनायें तब मुख बांध के बनावें, क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े । आठवें दिन क्षौर नखच्छेदन करावें । स्नान करके पाक बनाया करें। आर्यों को खिलाकर आप खावें।

एक साथ (एक ही थाली में) भोजन करना चाहिए या नहीं

एक साथ भोजन करने में बहुत दोष हैं-क्योंकि एक-दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जिस प्रकार कुष्ठी आदि के दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है,सुधार नहीं। इसलिए मनुस्मृतिकार ने लिखा है-

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।

न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत।। मनु०२।५६

अर्थात् किसी को अपना झूठा भोजन न देना चाहिए और न किसी का झूठा भोजन स्वयं खाना चाहिए। अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और न बिना मुंह-हाथ साफ किये इधर-उधर जाना चाहिए।

गोरक्षा की उपयोगिता

बन्धुओ! स्वामी जी ने इसी समुल्लास में गो रक्षा की उपयोगिता को आर्थिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः एक गाय की रक्षा ही सहस्रों मनुष्यों के प्राण धारण का कारण बनती है,जबकि एक गो के मांस से थोड़े से जिह्वालोलुप व्यक्तियों को ही तृप्ति होती है। फिर मांसाहार सभी दृष्टियों से महापाप है। **इसीलिए हम याद रखें कि गोरक्षा में ही राष्ट्र की रक्षा है।**

बन्धुओ! इस प्रकार दस समुल्लासों के साथ-साथ सत्यार्थ प्रकाश के पूर्वार्द्ध की कथा समाप्त होती है। यह इस पवित्र ग्रन्थ का विधेयात्मक अंश है,जिसमें मानव जीवन के सर्वांगीण विकास की एक व्यापक योजना प्रस्तुत की गई है। यदि हम सत्यार्थ प्रकाश के इन दस समुल्लासों पर आधारित इस दस दिवसीय कथा में वर्णित सिद्धान्तों तथा मन्तव्यों के अनुसार अपना जीवनयापन करेंगे तो हमारी शारीरिक,मानसिक,आत्मिक और सामाजिक उन्नति होकर हमारा महान् भारत फिर गौरव की ऊंचाइयों को छूकर 'विश्व गुरु' का आसन प्राप्त कर सकेगा, यह सुनिश्चित है।

अपने ग्रन्थ के द्वितीय भाग (उत्तरार्द्ध) में स्वामी जी ने आर्यावर्तीय तथा अन्य देशों में जन्मे विभिन्न मत मतान्तरों के अन्धविश्वासपूर्ण तथा युक्ति (तर्क)हीन,अवैज्ञानिक मतों का खण्डन किया है। मोक्ष के अभिलाषी और राष्ट्र एवं विश्व के सच्चे कल्याण के इच्छुक जनों को इस खण्डनात्मक प्रकरण को भी मनोयोगपूर्वक पढ़ना चाहिए और उसके अनुसार आचरण करते हुए सभी दुरितों को त्यागकर जो भद्र और कल्याणकारी है उसे अपनाना चाहिये तभी उस परमात्मदेव का दर्शन सम्भव है। बन्धुओ! इस द्वितीय भाग(उत्तरार्द्ध) की कथा का प्रारम्भ कल से करेंगे। इत्योम् शम्।

ग्यारहवां दिन

विविध भारतीय मत-मतान्तर

इन दिनों चन्दनपुर और आसपास के गांवों में ऋषि दयानन्द के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की मंगलमयी कथा की ही चर्चा थी। कल सत्यार्थ प्रकाश के पूर्वार्द्ध की कथा के प्रभावशाली समापन के पश्चात् आज की कथा में उपस्थिति और भी अधिक थी। ईश भजन और गायत्री संकीर्तन के पश्चात् श्री सत्यपाल जी ने ठीक समय पर उत्तरार्द्ध की कथा का शुभारम्भ किया।

आदरणीय गुरुजनों,मित्रो और माताओ! पिछले दस दिनों में पूर्वार्द्ध के दस समुल्लासों की कथा में हमने मनुष्य जीवन की महिमा बताते हुए,जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति या ईश्वर प्राप्ति के साधनों की चर्चा की थी। बन्धुओ! इस प्रकार हम अब तक क्रमशः मनुष्य मात्र के उपास्य एक ईश्वर तथा उसके अनेक नाम,माता-पिता और आचार्य का सुयोग्य सन्तान के निर्माण में कर्त्तव्य तथा बालकों की शिक्षा,ब्रह्मचर्य काल में ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य और शास्त्रीय शिक्षण व्यवस्था, गृहाश्रम की महिमा तथा गृहाश्रम के कर्त्तव्य,वानप्रस्थ और संन्यासी के कर्त्तव्य कर्म,राजा और प्रजा का पारस्परिक धर्म या कर्त्तव्य,इन समस्त कर्त्तव्यों के विधायक वेद का गौरव और उसका सार्वभौम स्वरूप,सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय सम्बन्धी वैदिक चिन्तन,जीवात्मा के बन्धन और मोक्ष का रहस्य तथा आचार-अनाचार और भक्ष्य-अभक्ष्य के सम्बन्ध में विचार कर चुके हैं।

माताओ और मित्रो! विविध प्रकार के कर्त्तव्य कर्मों का यह चिन्तन और आचरण ही धर्म कहलाता है चूँकि इस धर्म का आधार परम पिता परमात्मा की कल्याणी वाणी वेद है इसलिए उसे वैदिक धर्म कहते हैं।

यह 'वैदिक धर्म' सब प्रकार के कर्त्तव्य कर्मों (धर्मों) का कोष है। इसलिए महर्षि मनु ने लिखा है-**'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्'** परन्तु जिस प्रकार गंगोत्री से आगे बढ़ने पर गंगा के शुद्ध जल में अनेकों नदी नाले मिलते आये और उसने हावड़ा(कलकत्ता) पर जाकर हुगली का रुप ले लिया जहां जल अत्यधिक गन्दला और सर्वथा अपेय है,वैसे ही धर्म गंगा में भी अनेकों नदी-नाले आकर मिल गये और धर्म-गंगा का रूप बड़ा ही विकृत और विनाशकारी हो गया। अतः जैसे विकृत जल को काम में लाने के लिए उसका छानना (Filteration) और गर्म करके शोधना जरूरी है वैसे ही धर्म में आई विकृति या मत-पन्थों का पर्यालोचन भी प्रभु प्राप्ति की राह पर बढ़े रहे साधक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। **इसीलिए सत्यार्थ प्रकाश के दसवें समुल्लास तक वेदोक्त विधायक कर्त्तव्यों का विधान करने के पश्चात् धर्म के नाम से प्रचलित भारतीय और अन्य देशस्थ मत-पन्थों की समीक्षा को एक पुनीत कर्त्तव्य के रूप में सत्यार्थ प्रकाश के उतरार्द्ध में ११ वें से १४ वें समुल्लास तक प्रस्तुत किया गया है। आज हम ११ वें समुल्लास के प्रकरण में अपनी कथा आरम्भ कर रहे हैं।**

स्वदेश गौरव गान

प्रिय मित्रो और मान्य गुरुजनों! इस सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक लगभग दो अरब वर्ष होते हैं। महाभारत काल तक सारे संसार में एक मात्र यह वैदिक धर्म ही प्रचलित था। सारे संसार में तब तक मात्र आर्यों का अखण्ड चक्रवर्ती सांस्कृतिक साम्राज्य था। यह वह समय था,जब कवि की यह उक्ति चरितार्थ हो रही थी-

रूयें जमीं से आती एक वेद की सदा थी।

हर सर अदब से वेदों के रोवरू झुका था।।

अर्थात् उस समय एकमात्र धर्म ग्रन्थ-वेद,एक मात्र उपास्यदेव ओ३म्,एक मात्र अभिवादन-नमस्ते और एक मात्र गुरुमन्त्र गायत्री का ही सर्वत्र प्रचार था। संसार भर के श्रेष्ठ पुरुषों की तब एक ही संज्ञा थी-आर्य और सम्पूर्ण विश्व की एक ही भाषा थी-संस्कृत। सारा संसार तब एक ओम्ध्वज की छाया में परस्पर बन्धुत्व और मैत्री भाव रखता हुआ सुख-शान्ति का अनुभव करता था। इस प्रकार किसी कवि की यह भावना पूर्ण रूप में चरितार्थ हो रही थी-

ओ३म् हमारा देव है,वेद हमारा धर्म ।

आर्य हमारा नाम है,सत्य हमारा कर्म।।

मित्रो और माताओ! हमारे इस देश भारत का नाम तब आर्यावर्त था और यही तब सारे विश्व का गुरु था। सज्जनो! आर्यावर्त के तुल्य समस्त भूमण्डल पर अन्य कोई देश नहीं था। धन धान्य और वैभव पूर्ण भारत भूमि को अन्य देशवासी स्वर्णभूमि के नाम से जानते थे। भारत ही सदा से धरती की समग्र मानव जाति का आदि गुरु रहा है। महर्षि मनु ने इस विषय में लिखा है-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।मनु०२।२०।।

अर्थात् यहां के अग्रजन्मा ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर ही पृथ्वी के समस्त मनुष्यों ने धर्म,अध्यात्म और चारित्र्य की शिक्षा ग्रहण की है। बन्धुओ! सृष्टि के आरम्भ काल से लेकर पांच हजार वर्ष पूर्व तक समस्त पृथ्वी पर आर्यों का अखण्ड,चक्रवर्ती,सार्वभौम साम्राज्य था।

इस प्रकार स्वायंभुव मनु राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का ही चक्रवर्ती साम्राज्य रहा। तत्पश्चात् परस्पर वैर विरोध के कारण भाई से भाई लड़कर नष्ट हो गए। इस प्रकार महाभारत के युद्ध के पश्चात् पौराणिक एवं तान्त्रिक युग में देश और संस्कृति का भयानक पतन हुआ। इसी पतन काल में विविध मत-पन्थों की स्थापना और उनका विस्तार भारत और भारत के बाहर के देशों में हुआ,और इसके साथ ही मांस भक्षण आदि दुर्व्यसनों का विशेष रूप से प्रचलन हुआ।

वाममार्गीय परम्परा का प्रादुर्भाव

बन्धुओ! प्रचलित मत-मतान्तरों में महाभारत के पश्चात् वाम मार्ग सर्वाधिक भयंकर था। वाम मार्गी मद्य,मांस,मैथुन,मत्स्य और मुद्रा- इन पांच मकारों के सेवन को ही मोक्ष का हेतु मानते थे। इनकी शिक्षाएं सदाचार और मर्यादा की विनाशक तथा मनुष्य को चारित्रिक पतन के गर्त में गिराने वाली हैं। वाममार्गियों द्वारा प्रचलित अनाचार,दुराचार और यज्ञों में पशुबलि एवं नरबलि के अर्थ गलत समझे जाकर अमानवीय हिंसा का समावेश होने पर इसकी प्रतिक्रिया में बौद्ध एवं जैन मत वेद विरोधी नास्तिक जिन्होंने आर्यों में प्रचलित वर्ण व्यवस्था का विरोध किया तथा झूँठे त्याग और वैराग्य की शिक्षा(अतिवादिता से ग्रसित हो) देकर लोगों में अकर्मण्यता का प्रचार किया।

शंकराचार्य का एकेश्वरवाद

मित्रो! ऐसे समय में शंकराचार्य, जो कि दर्शन उपनिषद् के विद्वान् थे उन्होंने जैनियों और बौद्धों द्वारा फैलाये जा रहे अनीश्वरवाद का मुकाबला करने के लिए उन दोनों से सर्वथा विपरीत सिद्धान्त चला कर जनता को वेदमत की ओर पुनः आकृष्ट करने के लिए 'ब्रह्म' को ही एकमात्र सत्य घोषित किया। ये दोनों मतवादी जिस जीवात्मा और प्रकृति को सत्य कहते थे उन्हें 'ब्रह्म' की तुलना में मिथ्या घोषित किया। उनकी कदाचित् कामना यही थी कि एक बार भारत भूमि से इन अवैदिक विचारों का सर्वथा नाश कर देने के बाद वह 'ब्रह्म' को सर्वोपरि चरम सत्य बताकर,जीव और प्रकृति के रूप को भी वैदिक ढंग से समझायेंगे। किन्तु उन्हें जीवन के बहुत थोड़े वर्ष ही मिल पाये। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अभिप्राय को न समझ कर उनके अनुयायियों ने अपनी गद्दी को ही सुरक्षित रखना लक्ष्य मान लिया। परिणामतः शंकर के वचनों की व्याख्या के नाम पर नए-नए मत-अद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टा-द्वैतवाद आदि के नाम से चल पड़े। इन सभी का मूल मन्त्र था -

अजगर करे न चाकरी,पंछी करे न काम।

दास मलूका कहि गये,सबके दाता राम।।

इस प्रकार जगत् के मिथ्यावाद का प्रचार करने के कारण शंकराचार्य की शिक्षायें भी देशवासियों में पुरुषार्थ और कर्मण्यता का प्रचार करने के स्थान में और भी कर्तव्य-शून्यता और राष्ट्रधर्म की उपेक्षा का आधार बन गयीं।

थोथे कर्मकाण्ड की सृष्टि

माताओ और मित्रो ! मध्यकालीन भारत में शैव,शाक्त,वैष्णव गाणपत्य एवं सौर सम्प्रदायों का प्रभुत्व रहा जो शिव,शक्ति,विष्णु,गणेश और सूर्य के उपासक थे। शैवों ने रुद्राक्ष,त्रिपुण्ड धारण,भस्म धारण और मादक द्रव्य सेवन को ही शिव का प्रसाद प्राप्त करने का उपाय माना। इस प्रकार थोथे कर्मकाण्ड की वृद्धि हुई और मूर्तिपूजा के सर्वनाशकारी पाखण्ड का प्रचलन होकर वैदिक उपासना का निर्मल स्वरूप सर्वथा लुप्त हो गया।

विभिन्न पुराणों की रचना

बन्धुओ! इस थोथे कर्मकाण्ड को प्रामाणिकता देने के लिए विभिन्न 'पुराण' नामधारी ग्रन्थों की रचना की गई तथा उन्हें व्यास कृत बताया गया। इन ग्रन्थों में अनेक युक्ति, तर्क एवं विज्ञान विरुद्ध बातों का समावेश किया गया। वैष्णव मत का प्रचार रामानुज, रामानन्द, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ आदि आचार्यों ने किया।

मुक्ति प्राप्ति के सरल साधनों की सृष्टि

बन्धुओ! इस प्रकार पुराणों के प्रचार और प्रसार से अवतार-वाद, मूर्तिपूजा, मृतक-श्राद्ध, व्रत, तीर्थयात्रा आदि अनेक पाखण्डमूलक आचारों का व्यापक प्रचार हुआ। सारा देश मठों,मन्दिरों और देवालयों से भर गया,जहां उपासकों के मुण्डन की हर सम्भव व्यवस्था की गई। बद्री, केदार, सोमनाथ, रामेश्वर, द्वारिका,जगन्नाथपुरी आदि शैव-वैष्णव तीर्थ पाखण्ड स्थलों के रूप में परिवर्तित हो गए। हर अच्छे और पवित्र काम से छुट्टी पाने का बहाना और निम्न कोटि के काम का समर्थन 'अवतारवाद' की आड़ में हमें मिलने लगा। रही सही कसर मिथ्यामहात्म्य और 'कलियुग केवल नाम अधारा' की मान्यता से पूरी कर दी। कैसा भी पाप करो पहले तो कलियुग के मत्थे ही छुट्टी फिर यम द्वितीया के दिन यमुना में नहालो,सारे गुनाह माफ! दशहरे के दिन नीलकठ के दर्शन से २१ पीढ़ियां तर जावेंगी। गंगा में नहाने,गंगा-जल स्पर्श करने और गंगाजल के दर्शन का तो अपार पुण्य है ही पर चार सौ कोस या ८०० मील से ही गंगा-गंगा कहने मात्र से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार मुक्ति प्राप्ति के सस्ते नुस्खे आविष्कृत किये जाने लगे और तप, त्याग, वैराग्य, ईश्वर-प्रणिधान जैसे शास्त्र वर्णित साधनों की अवहेलना होने लगी,जिसका दुष्फल हुआ-राष्ट्रवासियों का घोर नैतिक पतन,दीनता-दरिद्रता और सैकड़ों वर्षों की घोर दासता। माताओ और मित्रो!जहां देशवासियों में पुरुषार्थ हीनता,अकर्मण्यता तथा अन्ध विश्वासों के फैलाने में फलित ज्योतिष और उससे उत्पन्न मिथ्या धारणाओं का हाथ रहा है,वहां स्वर्ग-नरक के काल्पनिक किस्से तथा दान के दुरुपयोग और मिथ्या महात्म्य भी इसमें सहायक सिद्ध हुए हैं।

विभिन्न तिलक छापों द्वारा मुक्ति

सत्संग प्रेमी बन्धुओ और माताओ! इस देश में यह भी विश्वास किया जाने लगा कि सम्प्रदाय विशेष में दीक्षा लेकर उसके (अवैदिक) कर्मकाण्ड को अपनाने यथा तिलक माला कण्ठी आदि के धारण करने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसी अवस्था में स्वभावतः ही धर्म का सदाचार से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। बाह्य आडम्बर ही पर्याप्त माने जाने लगे।

मूर्तिपूजा और अवतारवाद

आर्यावर्त में सबसे पहले चार्वाक और बौद्ध मत की शिक्षा से लोगों को परमात्मा के होने न होने में महान् शंका उत्पन्न हुई। और इस पवित्र भूमि के रहने वाले परमात्मा की उपासना से गिरकर

'बुद्धं शरणं गच्छामि' की दीक्षा लेकर मानव-पूजन एवं मूर्ति पूजा के अन्धकारमय जाल में फंस गए। उपासना की यह विधि जन साधारण में ऐसी प्रचलित हुई कि वैदिक धर्म के उपदेश देने वालों ने भी बौद्धमत की पद्धति पर चलना अपने लिए लाभदायक समझा। ब्राह्मणों ने महात्मा बुद्ध के स्थान में श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्ण को सेव्य बनाकर और उनको अवतारों की पदवी देकर लोगों के सामने पेश किया। धीरे-धीरे इस भाव ने इतना प्रबल रूप धारण कर लिया कि कुछ समय पश्चात् पौराणिक काल के सम्पूर्ण ग्रन्थों में इसी की चर्चा दीख पड़ने लगी और चारों ओर से अवतार ही अवतार प्रकट होने लगे और इन्हीं को आधार बनाकर जैनों और बौद्धों के क्रम में मूर्तिपूजा का सर्वनाशी दौर आरम्भ हुआ।

स्वामी दयानन्द का निश्चित मत था कि मूर्तिपूजा आर्य जाति की समस्त त्रुटियों का केन्द्र है और वह कभी वेद शास्त्र प्रतिपादित नहीं है। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने मूर्तिपूजा पर अपने विचार इस प्रकार दिए हैं-

'जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना,अन्यत्र न करना यह एक ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजा को एक राज्य की सत्ता से छुड़ाकर एक छोटी सी झोपड़ी का स्वामी मानना। देखो! यह एक कितना बड़ा अपमान है, वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो।'

'जब व्यापक मानते हो,तो वाटिका से पुष्प-पत्र तोड़कर क्यों चढ़ाते हो? चन्दन घिसकर क्यों लगाते हो? धूप को जलाकर क्यों देते हो? घंटा,घड़ियाल,झांज पखावजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो? वह तुम्हारे शिर में है उसे क्यों नमाते हो? अन्न जलादि में है फिर क्यों नैवेद्य धरते हो? जल में है स्नान क्यों कराते हो? क्योंकि सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की उपासना करते हो या व्याप्य की?जो व्यापक की करते हो तो पाषाण,लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो,और व्याप्य की करते हो तो,'हम ईश्वर की पूजा करते हैं' ऐसा झूठ क्यों बोलते हो? हम पाषाण के पुजारी हैं' ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते?

निराकारवादी परम्परा का प्रादुर्भाव

ऐसे समय में जबकि साम्प्रदायिक मिथ्या कर्मकाण्डों का बोलवाला था,कबीर,नानक,रेदास,दादू आदि सन्तों ने ईश्वर को निराकार और सर्वव्यापक बताते हुए मूर्तिपूजा,तिलक-छापों आदि साम्प्रदायिक धारणाओं का तीव्रतम खण्डन किया। किन्तु कालान्तर में इस विचारधारा में निहित क्रान्तिदर्शिता तथा उदारता समाप्त हो गई। अन्य सम्प्रदायों की भांति ही ये संतगण भी सम्प्रदाय प्रवर्तक बन गए और मूर्तियों की भांति इनकी गद्दी और खड़ाऊ आदि की पूजा प्रचलित हो गई।

ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज

माताओ और सज्जनो! अंग्रेजों के भारत आगमन और ईसाई पादरियों के क्रियाकलापों से लोगों के धार्मिक चिन्तन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। फलस्वरूप बंगाल में राजा राम मोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की तथा उसी के समान महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इन नवीन सुधार आन्दोलनों में यद्यपि अनेक बातें अच्छी थीं किन्तु वे बहुत कुछ ईसाइयों की रीति-नीति

को अपना रहे थे। ब्रह्म समाज ने निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना का प्रचार किया, मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि के पाखण्डों से लोगों को मुक्त किया किन्तु वेद को प्रमाण न मानने,पुनर्जन्म को स्वीकार न करने, यज्ञादि वैदिक कर्मकाण्ड का तिरस्कार करने के कारण ब्रह्म समाज भारतीय आर्यों के लिए बहुत प्रेरणादायी न रहा। इस संबंध में स्वामी जी लिखते हैंः-

'ब्रह्म समाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर एक नवीन मत चलाने में प्रवृत्त होना,मनुष्यों को स्थिर और वृद्धिकारक कर्म क्यों कर हो सकता है?'

इस प्रकार स्वामी जी ने भारतीय मत मतान्तरों की समीक्षा एवं आलोचना करने के पश्चात् यह सिद्ध करने का सफल यत्न किया है कि **सच्चा धर्म एक ही है,जिसके मौलिक तत्त्वों को प्रायः सभी मत वाले स्वीकार करते हैं। अन्तर तो मतवादियों के स्थूल कर्म-काण्ड तथा उनकी संकीर्ण मान्यताओं में है,जिनके कारण उन्होंने अपने आपको पृथक्-पृथक् दायरों में बांध रखा है। तपस्वी,विद्वानों,आदर्श ब्रह्मचारियों और संन्यासी वर्ग का कर्त्तव्य है कि वे धर्म के वास्तविक स्वरूप के प्रचार में संलग्न हो जायें जिससे देश इस भ्रमजाल से सर्वथा मुक्त होकर अपने पूर्व गौरव को प्राप्त कर फिर से जगद्गुरु के आसन पर सुशोभित हो सके।** आर्य समाज जैसे तेजस्वी सुधारक समाज की स्थापना इसी आधार पर की गई।

श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर कथा का आनन्द ले रहे थे। वे उठना ही न चाहते थे। पर समय अधिक हो जाने से सत्यपाल ने शान्ति पाठ से पूर्व जिज्ञासु जनों को आज की कथा से संबंधित शंकायें प्रस्तुत करने का अवसर भी दिया। श्रोताओं में से कुछ ने शंकायें रखीं जिनका सत्यपाल ने बड़ी ही सौम्य शैली में मुस्कराते हुए बड़ा उत्तम समाधान किया। अन्त में मोहन ने परम पिता परमात्मा और उपस्थित जन समूह का हार्दिक धन्यवाद करते हुए श्री सत्यपाल जी के प्रति अत्यधिक आभार प्रकट किया।(८)

सत्यार्थ प्रकाशः महापुरुषों की दृष्टि में

सत्यार्थ प्रकाश मेरे लिए ही नहीं बल्कि संसार भर के लिए सच्चा प्रकाश है।

महात्मा गांधी

सत्यार्थ प्रकाश जैसा सुधारक दूसरा ग्रन्थ मैंने नहीं पढ़ा।

महामहिम डॉ.राजेन्द्र प्रसाद, प्रथम राष्ट्रपति

(८) भारत के पूर्व गौरव का स्मरण करते हुए महर्षि ने इस ११ वें समुल्लास के अन्त में आर्य नरेशों की एक तालिका भी दी है जो इतिहास के विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की वस्तु है।

बारहवां दिन

चार्वाक,बौद्ध और जैन मत

आज सत्यार्थ प्रकाश की पुण्यमयी पावन कथा का बारहवां दिन था। कल की कथा में भारत और विश्व के धार्मिक पतन के साथ किस प्रकार नैतिक,सामाजिक और राजनैतिक पतन का गहरा सम्बन्ध है इस विषय में तथ्यों को जानकर मानव के देव पद से गिर कर दानव या असुर बनने की कहानी को सुनने में जनता की गहन रुचि जग चुकी थी,अतः आज श्रोताओं की विशेष उपस्थिति के लिए विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता हो गई थी। ठीक समय पर ईश-विनय के पश्चात् श्री सत्यपाल जी ने कथा का शुभारम्भ किया-

हमारे समादरणीय गुरुजन-वृन्द, मित्रो और माताओ! महाभारत काल और उससे कुछ पूर्व से ही धर्म के नाम पर अधर्म को गले लगाकर हमारा राष्ट्रीय पतन आरम्भ हो गया था। योगीराज श्रीकृष्ण ने खण्ड-खण्ड भारत को फिर एक बार 'महाभारत' बनाने का प्रयत्न किया। उससे कुछ समय के लिए राष्ट्र संभला भी किन्तु शीघ्र ही वर्णाश्रम धर्म के शुद्ध स्वरूप में विकार आ जाने से राष्ट्र धर्म की भावना ही मर गई। यह चार्वाक मत का उदय काल था स्थिति यह हो गई कि-

ब्राह्मण हो गये विद्याहीन,क्षत्रिय हो गये विषयाधीन।
वैश्यों के व्यापार मलीन,या विधि भारत दुखिया दीन।।

इस प्रकार राष्ट्र मुकुट ब्राह्मण विद्या और चरित्र में गिर गया किन्तु उसे अपनी पूजा-प्रतिष्ठा को कायम रखना था। अतः गुरुडम और अन्धविश्वासों की सृष्टि हुई। धर्म की आड़ में अनेक पापाचार पलने लगे जिसकी प्रतिक्रिया बौद्ध और जैन मत के रूप में सामने आई।

हमने चार्वाक मत का नामोल्लेख किया था। हमारे धार्मिक पतन के काल में भारतवर्ष में ही कुछ ऐसे मत भी प्रचलित हुए जो वेदों के प्रमाण की अवज्ञा करते थे,यज्ञादि वैदिक कर्मकाण्ड का उपहास करते थे,जिनकी वैदिक वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था में थोड़ी भी आस्था नहीं थी। इन्हें नास्तिक या लोकायत मत कहा जाता था। इनमें चार्वाक मत प्रमुख है। इसका कोई ग्रन्थ नहीं होता,किन्तु सर्वदर्शन में जिसमें चार्वाक मत का दिग्दर्शन कराया गया है,उससे ही चार्वाकों की मान्यताओं की जानकारी प्राप्त होती है।

चार्वाक मत की कुछ मान्यतायें

बन्धुओ,यह मत न पुनर्जन्म को मानता है और न ईश्वर जैसी किसी सर्वोच्च सत्ता की सत्ता को। यह मत जीव या आत्मा को शरीर के साथ ही उत्पन्न और नष्ट होना मानता है। इसी आधार पर यह मत जीवन की सब चिन्ता छोड़कर सुख पूर्वक जीने का उपदेश देता है। इस मत के अनुसार 'आकाश' के अतिरिक्त बाकी चार तत्वों पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि-से ही संसार का निर्माण होता है। इन्हीं के योग से चैतन्य या जीव उत्पन्न होता है। और वियोग होने के साथ ही वह नष्ट हो जाता है। इस प्रकार यह मत केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही स्वीकार करता है। इस मत की मान्यता है कि जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से है अर्थात् जगत् का कोई कर्त्ता नहीं और न उसके भोक्ता जीव का ही कोई अस्तित्व है।

चार्वाक के सिद्धान्तों का खण्डन

बन्धुओ!चार्वाक मत की यह विचार धारा या मान्यता सर्वथा अवैदिक और अवैज्ञानिक है। अब मैं उक्त भ्रान्त धारणाओं का निराकरण सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर आपके समक्ष रखता हूँ।

जड़ से चेतन की उत्पत्ति का खण्डन

बन्धुओ,यह पृथिव्यादि जड़ पदार्थ हैं। इनसे चेतन की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती है। जिस प्रकार माता-पिता के संयोग से शरीर का निर्माण होता है,उसी प्रकार आदि सृष्टि में बिना ईश्वर (कर्ता) मनुष्यादि के शरीरों की रचना नहीं हो सकती है।

प्रत्यक्ष के कर्त्ता को अपना प्रत्यक्ष नहीं होता

मेरे मित्रो और माताओ! जिस प्रकार आंख सबको देख सकती है लेकिन अपने आपको नहीं देख सकती,ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष का कर्त्ता स्वयं का प्रत्यक्ष नहीं कर सकता है। जो दृष्टा है वह कभी दृश्य नहीं होता। जिस प्रकार बिना आधार के आधेय,कारण के बिना कार्य और कर्त्ता के बिना कर्म नहीं रह सकते,ठीक उसी प्रकार कर्त्ता के बिना प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? अतः केवल प्रत्यक्ष को ही मानना सर्वथा गलत है।

सृष्टि स्वयं कभी नहीं बनती

माताओ और मित्रो! बिना चेतन ईश्वर के निर्माण किये कोई भी जड़ पदार्थ स्वभाव से नियम पूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। यदि स्वभाव से ही ऐसा होता तो सूर्य चन्द्र आदि लोक अपने आप ही बन गये होते। लेकिन ऐसा नहीं है। जैसा हम प्रतिदिन देखते हैं कि मनुष्य (जो स्वयं चेतन है कई जड़ पदार्थों में जब वह गति दे देता है तभी वे गतिमान होते हैं,जैसे-मशीन आदि) मशीनों को गति देने में मूल कारण है। यह मूल कारण मनुष्य अर्थात् चेतन सत्ता होती है। ठीक इसी प्रकार इस विशाल ब्रह्माण्ड को गति देने वाली कोई बड़ी चेतन सत्ता होनी चाहिए और वह है-ईश्वर।

यदि जीव न हो तो सुख-दुःख का भोग कौन करे?

स्वर्ग और नरक,सुख-दुःख का भोग कौन करे? अतः जिस प्रकार इस जन्म में सुख-दुःख का भोक्ता (भोगने वाला,जीव) है, उसी प्रकार पहले भी था और आगे भी रहेगा। यदि सुख-दुःख का भोक्ता जीव न हो तो सत्य परोपकार आदि धार्मिक क्रियायें सब निरर्थक होंगी।

जीव नित्य है,वह नष्ट नहीं होता

बन्धुओ!मृत्यु होने पर केवल शरीर का ही अभाव होता है,जीव का नहीं। क्योंकि जीव अनादि और नित्य सत्ता। यह केवल अपने कर्मों के अनुसार योनि (चोला) बदलता है। जैसा कि योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कहा है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि ग्रह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही। गीता २।२२

जैसे कोई व्यक्ति फटे पुराने कपड़ों को उतार देता है और दूसरे नये वस्त्रों को पहन लेता है ठीक इसी प्रकार यह आत्मा देही धारण करने वाला जीर्ण, शीर्ण शरीरों को त्याग कर नये शरीरों को धारण कर लेता है।

चार्वाक का बौद्ध और जैनों से मतभेद

यह चार्वाक मत शरीर की उत्पत्ति के साथ जीव की उत्पत्ति और उसके नाश के साथ जीव का भी नाश मानता है। पुनर्जन्म को नहीं मानता। साथ ही एक प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त अनुमान आदि प्रमाणों को नहीं मानता,जबकि बौद्ध और जैन प्रत्यक्षादि प्रमाण,जीव का अनादित्व, पुनर्जन्म,परलोक और मुक्ति को मानता है।

तीनों मतों में समानता

ये तीनों मत नास्तिकता,वेद व ईश्वर की निन्दा,पर-मत-द्वेष,जगत् का कर्त्ता कोई नहीं-इत्यादि बातों में समान विचार रखते हैं।

बौद्ध मत : एक चिन्तन

मित्रो और माताओ! आयें अब हम-बौद्ध मत के सम्बन्ध में संक्षेप में विचार करें।

बौद्ध मत का प्रचार गौतम बुद्ध की नैतिक शिक्षाओं से हुआ। **प्रारम्भ में बौद्ध विचारधारा मुख्यतः नीति,सदाचार और मानवतावाद की व्यापक शिक्षा पर आधारित थी।** किन्तु बाद में इसे विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं के जाल में जकड़ दिया गया जिससे इन बौद्धों में भी अनेक मत चल पड़े। ईश्वर के अस्तित्व व उसके ज्ञान को पूर्णतः नकार देना इस मत की सबसे बड़ी कमजोरी रही।

बौद्ध मत की कुछ प्रमुख मान्यतायें

बन्धुओ!इस मत की कुछ मान्यतायें इस प्रकार हैंः १ यह मत शून्यवाद में विश्वास रखता है। २.संसार को क्षण भंगुर मानता है। ३.सब संसार दुःख का घर है।

बौद्ध मत की मान्यताओं की समीक्षा

माताओ और मित्रो! बौद्ध मत की यह मान्यतायें सर्वथा अवैदिक हैं। अब मैं इन मान्यताओं के विषय में सत्यार्थ प्रकाश के आधार पर विचार करना चाहूँगा। विद्यमान वस्तु शून्य रूप कभी नहीं होती। बौद्ध मतानुसार यदि सभी शून्य हो तब भी शून्य का जानने वाला कभी शून्य नहीं हो सकता है क्योंकि शून्य को शून्य नहीं जान सकता। इस प्रकार शून्य का ज्ञाता,और ज्ञेय दो पदार्थ सिद्ध होते हैं।

क्षणिकवाद के सिद्धान्त के अनेक दोष

माताओ और सज्जनो! बौद्ध मतानुसार यदि संसार क्षणभंगुर है तो हमेशा दिखाई देने वाले पदार्थों में 'यह वही है' ऐसा स्मरण नहीं होना चाहिए। क्योंकि क्षणभंगुर होने से जब वह पदार्थ रहता ही नही तब स्मरण किसका? इस प्रकार बौद्धों का क्षणभंगुर का यह सिद्धान्त सर्वथा निराधार तथा भ्रममूलक है।

यदि संसार दुःखमय है तो उसमें प्रवृत्ति क्यों?

मित्रो!यदि यह संसार दुःखमय ही होता तो किसी भी जीव की प्रवृत्ति इसमें नहीं होती। लेकिन देखा यह जाता है कि जीवों की स्वाभाविक प्रवृत्ति संसार में रहती है,इसलिए यह संसार दुःखरूप नहीं हो सकता। यदि बौद्ध लोग इस सिद्धान्त को मानते हैं तो उन्हें खान-पान,शरीर-रक्षण आदि में प्रवृत्त होकर सुख की अनुभूति नहीं होनी चाहिए। लेकिन उन्हें भी सुख की अनुभूति होती है । अतः सिद्ध है कि संसार दुःखमय नहीं है।

वस्तुतःसंसार में सुख और दुःख दोनों विद्यमान हैं। यदि संसार में दुःख ही दुःख हो और सुख बिल्कुल न हो,ऐसा कभी नहीं हो सकता। क्योंकि सुख की अपेक्षा के बिना दुःख की सिद्धि नहीं होती। जैसे रात्रि के कारण दिन की सिद्धि होती है,ठीक उसी प्रकार सुख के कारण दुःख की सिद्धि होती। अतः संसार को केवल दुःखमय माना उचित नहीं है।

बौद्ध और जैन मत में समानता

सज्जनो!जैसा कि आप जानते हैं,जैन मत के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी हैं। महावीर स्वामी,महात्मा बुद्ध के समकालीन ही थे। उस समय में धर्म और यज्ञ के नाम पर व्याप्त अधर्म और घोर हिंसा की प्रतिक्रिया के रूप में इन दोनों मतों का उदय होने से कई विषयों में दोनां मतों में पर्याप्त समानता है।

जैन और बौद्ध ये दोनों मत ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि बौद्ध ईश्वर की सत्ता बिल्कुल नहीं मानते जबकि जैन'जीवात्मा' के ही उच्चतम स्थिति में पहुंचने को 'परमात्मा' की स्थिति-स्वीकार करते हैं। ये दोनों ही मत संसार को दुःखमय बताकर उससे छूटने की बात कहते हैं। दोनों ही सदाचार पर बल देते हैं,पुनर्जन्म,परलोक और मुक्ति में विश्वास रखते हैं और कैवल्य प्राप्त साधु या तपस्वी को ही ईश्वर मानते हैं,जिन्हें तीर्थंकर कहकर सम्बोधित किया जाता है।

अल्पज्ञ जीव को ईश्वर मानना भूल है

बन्धुओ और माताओ! कोई भी सिद्ध पुरुष हो वह शरीर आदि की रचना को पूर्ण रूप से नहीं जानता है और जब वह सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है, तब उसे बिल्कुल भी भान नहीं रहता है। साथ ही जीव सुख-दुःख को प्राप्त होता है तब उसका ज्ञान और भी कम हो जाता है। अतः मेरे मित्रो और माताओ! जरा विचारिये तो सही,क्या ऐसा अल्पज्ञ और एक देशीय जीव परमेश्वर हो सकता है? कदापि नहीं।

सज्जनो! इस प्रकार स्पष्ट है कि समान विचार धारा वाले ये दोनों मत एक हैं। इस कथन की पुष्टि अमर कोष इस प्रकार करता है-

'जो जैनों में विद्वान् हैं,वे सब जानते हैं कि 'बुद्ध' और जिन' तथा 'बौद्ध' और जैन पर्यायवाची हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।'

बन्धुओ! इन जैनियों की मान्यताओं के सम्बन्ध में चार्वाक और बौद्ध मत की समीक्षा में मैं बतला चुका हूँ कि ये मान्यतायें सर्वथा अवैदिक और अवैज्ञानिक हैं। जैनियों के ग्रन्थों में सैकड़ों

मान्यतायें तर्क और विज्ञान के विरुद्ध भरी पड़ी हैं जिनका दिग्दर्शन स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के बारहवें समुल्लास में विस्तार से कराया है। अन्त में जैनी लोग मुक्ति के जिस स्वरूप को स्वीकार करते हैं उसका थोड़ा सा दिग्दर्शन आपको कराकर आज के विषय को यहीं विराम दूँगा।

जैनों की मुक्ति का वर्णन

जैनी लोग १४ राज्य मानते हैं। उनमें से चौदहवें की शिखा पर सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा से थोड़ी दूर पर स्थित सिद्धशिला तथा दिव्य आकाश को शिवपुर कहते हैं। केवली अर्थात् जिनको केवल ज्ञान, सर्वज्ञता और पूर्ण पवित्रता प्राप्त हो जाती है,वे ही इस लोक में जाते हैं। वहां ये अपने आत्म प्रदेश से सर्वज्ञ रहते हैं अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से छूट कर आनन्द पूर्वक रहते हैं-ऐसी मान्यता है,इन लोगों की।

बन्धुओ,अब विचारणीय यह है जिसका प्रदेश होता है,वह विभु नहीं होता और जो विभु नहीं वह सर्वज्ञ तथा केवल ज्ञानी भी नहीं हो सकता,क्योंकि जिसकी आत्मा एक देशी है,वो आता-जाता, बद्ध-मुक्त और ज्ञानी-अज्ञानी है। सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता है।

अतः जो तीर्थंकर जीव रूप होकर अल्प तथा अल्पज्ञ थे वे सर्वज्ञ और सर्वव्यापी कभी नहीं हो सकते। लेकिन जो परमात्मा सर्वज्ञ,सर्वव्यापी,अनादि और अनन्त है उसको ये लोग मानते ही नहीं,जिसमें ये सब गुण घटते हैं।

सज्जनो! किसी मनीषी का वचन है-'Morality is the Fruit of religion while religion is the root of morality" अर्थात् नैतिकता या सदाचार आस्तिकता की फल-श्री है,जबकि आस्तिकता सदाचार या नैतिकता की मूल है। जैसे **जिस आस्तिकता या ईश्वर-भक्ति अथवा धर्म परायणता का अन्तिम फल नैतिक जीवन या सदाचारमय जीवन न हो,वह आस्तिकता दो कौड़ी की भी नहीं है,ठीक उसी प्रकार सदाचार और नैतिकता की बातें जिनके मूल में आस्तिकता या ईश्वर भक्ति नहीं जड़ रहित वृक्ष के समान निरर्थक है।** यही कारण है कि बौद्ध और जैन सदाचार की बातें करते रहे किन्तु ईश्वर भक्ति या आस्तिकता के बिना लड़खड़ा गये। इतना ही नहीं इन्हें अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी को ही ईश्वर की जगह प्रतिष्ठापित करना पड़ा और तभी से 'बुतपरस्ती' या मूर्तिपूजा का दुर्भाग्य पूर्ण अध्याय भी धर्म के क्षेत्र में चल पड़ा जिसके भयंकर परिणामों को सदियों की गुलामी और घोर दरिद्रता के रूप में इस देश ने भोगा है।

माताओ और मित्रो! आज की कथा में हमने सत्यार्थ प्रकाश के १२ वें समुल्लास के आधार पर भारतीय नास्तिक मतों की मान्यताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। कल की कथा में ईसाई मत की समीक्षा प्रस्तुत करेंगे। इत्योमृशम्।

सभी भाव विभोर होकर इस पुण्यमयी कथा को सुन रहे थे। शान्ति पाठ और उद्घोषों के पश्चात् आज का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

तेरहवां दिन

ईसाई मत-एक चिन्तन

चन्दनपुर और समीप के देहातों की जनता को सत्यार्थ प्रकाश की इस पावन कथा से एक नया प्रकाश मिल रहा था। जन-जन के अन्तर्मन में रमे सत्य को यों उजागर करने वाले सत्यार्थ-प्रकाश का सन्देश सुनकर सभी को मानव जीवन के लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के सत्य साधनों का दिशा-बोध हो रहा था। यह सच्चाई भी अब क्रमशः सभी पर प्रकट हो रही थी कि **संसार में सभी मत पन्थों में जहां-जहां सार्वभौम और शाश्वत सत्य है उसका मूल स्रोत प्रभु की कल्याणी वाणी 'वेद' है। और जो-जो असत्य या भ्रान्त धारणायें हैं उनका आधार मनुष्य का अपना अज्ञान,स्वार्थ या विभिन्न परिस्थितियां हैं।** इस प्रकार इस पुण्यमयी कथा के प्रति जनता में रुचि निरन्तर बढ़ रही थी। फलतः आज की कथा में उपस्थिति और भी अधिक थी। श्री सत्यपाल जी ने ईश-प्रार्थना के पश्चात् इन शब्दों के साथ कथा का आरम्भ किया।

आदरणीय गुरुजनों,मित्रो और माताओ! आप भली प्रकार जान चुके हैं कि **मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति है जो सदाचारमय पवित्र जीवन द्वारा ही सम्भव है। बन्धुओ! जहां नास्तिकता सदाचारमय जीवन की शत्रु है,वहां ईश्वर का नाम लेकर,आस्तिकता द्वारा दुराचार का समर्थन और भी भयंकर है।** पौराणिक मत पन्थों के साथ ही ईसाई मत के सम्बन्ध में संक्षेप में कुछ विचार करने लगे हैं।

बन्धुओ! ईसाई मत बहुत कुछ प्राचीन यहूदी मत की मान्यताओं और धारणाओं पर आधारित है। बाइबिल के पुराने अहदनामे में यहूदी मत तथा नये अहदनामे में ईसाई मत की शिक्षाओं को संग्रहीत किया गया है। यहूदी और ईसाई मत पश्चिमी एशिया में उस समय पैदा हुए जब वहां के निवासी अनेकों प्रकार की अविद्या,अज्ञान और पाखण्डों से ग्रसित थे। मूसा ने यहूदी मत का प्रचार किया तथा अपने देशवासियों में नैतिकता तथा आचार की कुछ स्थूल मान्यताओं का प्रचार किया। बाद में पैलस्टाइन नगर में युसुफ और मरियम के जीसस नामक पुत्र जन्मा जो संसार में क्राइस्ट के नाम से विख्यात हुआ। जीसस के शिष्यों ने इन्जीलों की रचना की जो बाद में मैथ्यू, जान और ल्यूक आदि के नामों से प्रसिद्ध हुई। बाइबिल में जहां नीति सदाचार और मानव प्रेम की सामान्य शिक्षायें वर्णित हैं जिन पर मुख्य रूप से बौद्ध मत की छाया है और जिनका मूल स्त्रोत अन्ततः वेद है,वहां अनेकों बातें अवैज्ञानिक तथा बुद्धि और तर्क की कसौटी पर खरी न उतरने वाली,भरी पड़ी हैं। इनमें से कुछ बातों पर हम विचार करेंगे।

ईश्वर की सृष्टि को बेडौल बताना भूल है

बन्धुओ! बाइबिल का कहना है कि आरम्भ में ईश्वर ने जब सृष्टि की रचना की तब पृथ्वी बेडोल अर्थात् ऊंची-नीची बेतरतीब थी।

लेकिन यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि ईश्वर द्वारा निर्मित सृष्टि बेडोल थी तब बराबर किसने की? और क्या अब वो ऊंची-नीची नहीं है? मित्रो! ईश्वर का कोई काम कभी बेडोल नहीं होता,क्योंकि वह सर्वज्ञ है। **और जो सर्वज्ञ होता है उसके कार्य में कभी भूल-चूक नहीं होती है।**

आदम ईश्वर के सदृश क्यों न हुआ?

बन्धुओ! बाइबिल के अनुसार ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया और उसे आशीष दिया। पर विचारणीय बात यह है कि यदि ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में बनाया तो आदम उसके स्वरूप के समान क्यों नहीं हुआ? ईश्वर का स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप,आनन्दमय आदि लक्षण युक्त है,अतः आदम का स्वरूप भी वैसा ही होना चाहिए,लेकिन ऐसा नहीं है। और फिर अपने स्वरूप को ही उत्पन्न किया ऐसा माना भी जाये तो ईश्वर में अनित्य होने का दोष उत्पन्न होता है,जो सत्य के विरूद्ध है।

ईश्वर के अतिरिक्त कुछ न था तो सृष्टि कैसे बनी?

बाइबिल(ईसाई मत) की मान्यतानुसार वर्तमान सृष्टि से पूर्व ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। बन्धुओ! पुनः यहां भी यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि नहीं था तो जगत् कैसे बना? और ईश्वर का सामर्थ्य [६] द्रव्य है या गुण। यदि द्रव्य है तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ अवश्य होना चाहिए। और यदि गुण है तो गुण से द्रव्य कभी नहीं बन सकता। जैसे रूप से अग्नि और रस से जल कभी नहीं बन सकता। दूसरी बात यह कि यदि ईश्वर से जगत् बना हुआ होता तो ईश्वर के समान गुण कर्म और स्वभाव जगत् में नहीं हैं,जिससे स्पष्ट है कि जगत् ईश्वर से नहीं वरन् जगत् के कारण परमाणु आदि जड़ पदार्थों से बना है।

बन्धुओ ! इसी प्रकार ईसाई मत में मरियम कुंआरी से ईसा की उत्पत्ति,ईसा का मुर्दों को जीवित करना,अन्धों को नेत्र देना, चार रोटियों से सहस्रों का पेट भर देना,तीन दिवस पश्चात् कब्र से निकलकर आकाश में चढ़ जाना,पवित्र पिता,पवित्रात्मा (Holy father, Holy ghost) और पवित्र पुत्र (Holy son) इस त्रयी का पृथक् होते हुए भी एक होना,स्वर्ग प्राप्ति के लिए ईसा में विश्वास रखना,नारी का आदम की पसली से उत्पन्न होना आदि विज्ञान एवं तर्क के प्रतिकूल मिथ्या मान्यतायें भरी पड़ी हैं,जिनका सत्य और धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

बन्धुओं!अपनी विचारधारा का सम्प्रेषण सदैव सौम्य वार्ता के द्वारा होना चाहिये। इसमें राज्य सत्ता का उपयोग,लोभ,लालच,बल का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। दुर्भाग्य से सैमेटिक मजहबों के प्रचारकों ने यह खूनी दास्तान लिखी। ऊपर से शान्ति के अग्रदूत लगने वाले पोपों द्वारा अपने राज्य के विस्तार के लिए तथा बाइबिल की असत्य मान्यताओं का विरोध करने वाले वैज्ञानिकों पर जो अमानुषिक अत्याचार किए गए इसकी संक्षिप्त कहानी आपके समक्ष रखने लगा हूँ।

---

६. सामर्थ्य दो प्रकार का होता है- एक स्वगत और दूसरा स्ववशस्य पदार्थ गत। जिस प्रकार राजा की सेना आदि का बल भी उसी राजा का सामर्थ्य या बल माना जाता है। ठीक इसी प्रकार प्रकृति को ईश्वर से भिन्न पदार्थ होते हुए भी उसके वश में होने से उसी का सामर्थ्य कहा जाता है।

ईसाइयत का सही चित्रण इटली, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी, ब्रिटेन अफ्रीका आदि देशों के इतिहास में देखने को मिलता है कि वहां इसने राज्य सत्ता का सहारा पाकर विधर्मियों पर हृदय विदारक अत्याचार किये।

ईसाई मत और विज्ञान

बन्धुओ! यूरोप में जब-जब वैज्ञानिकों द्वारा बाइबिल के असत्य सिद्धान्तों का खण्डन किया गया तब तब ईसाई पादरियों और आचार्यों की ओर से सदैव वैज्ञानिकों पर अत्याचार हुए हैं। इन अत्याचारों का विस्तृत विवरण मिस्टर विलियम ड्रेयर ने अपनी पुस्तक [१०] में दिया है,जिनमें से दो एक उदाहरण आपके समक्ष रखता हूँः-

गैलीलियो द्वारा **'पृथ्वी गोल है और सूर्य की परिक्रमा करती है।'** यह सिद्धान्त प्रतिपादित करने पर उसे १० वर्ष के लिए कारागार की सजा दी गई क्योंकि यह सिद्धान्त बाइबिल के प्रतिकूल था।

इटली से सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक ब्रूनो द्वारा पूर्वोक्त सिद्धान्त का समर्थन करने के अपराध में कई बार कारागार की सजा दी गई और अन्त में १६ फरवरी १६०० में उसे जीवित जला दिया गया।

नेस्टर नामक ऐन्टियोक् (Antioch) के पादरी को यह युक्तियुक्त विचार प्रकट करने पर कि ईश्वर की कोई माता नहीं हो सकती(जिसका निर्देश ईसा मसीह को ईश्वर मानते हुए उसकी माता मरियम को मानने के ईसाई सिद्धान्त पर था) देश निकाला दे दिया गया।

पैलेगियस् नामक एक अन्य यूनानदेशीय दार्शनिक को इस विचार के प्रकट करने पर कि जगत् में मृत्यु आदम के पाप का फलरूप नहीं हो सकती(जैसे Original Sin के सिद्धान्त को मानते हुए ईसाई लोग कहते हैं,) उस समय के ईसाई सम्राट ने देश निकाला दे दिया और उसकी सारी सम्पति जब्त कर ली।

एक-दो नहीं,इस प्रकार की अन्य सैकड़ों घटनायें हैं कि जिस प्रकार ईसाई मत का इतिहास वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों के रक्त से रंजित है।

ईसाइयत के धर्म प्रचार में कुछ अपवाद

बन्धुओ!कुछ घटनायें ऐसी भी हैं जहां मानव सेवा का जामा पहिन कर मिशनरियों द्वारा स्कूल,अस्पताल तथा चर्च बनवाए गए। इस प्रकार मुफ्त शिक्षा,निःशुल्क चिकित्सा,अन्न वितरण तथा नौकरियां आदि का प्रलोभन देकर मनुष्य के ईमान को खरीदा गया। ठीक इसी मार्ग का अवलम्बन कर अंग्रेजों ने भारत के निवासियों को ईसाई बनाने का षड्यन्त्र रचा था।

संक्षेप में ईसाई मत प्रचार की यह शैली रही है कि छल,कपट त्याग व प्रेम में से किसी एक का सहारा लेकर या किसी अन्य ईसाई राजा के सहयोग से किसी देश के राजा को प्रथम ईसाई

---

१०. The History of the conflict between sciences & Religin.

बनाना और बाद में सत्ता का सहारा लेकर वहां की जनता को पशुओं की भांति झुण्ड के झुण्ड में ईसाई बनाना। रोम इस षड्यन्त्र का प्रधान केन्द्र था,जहां से प्रत्येक प्रकार का सहयोग उन्हें प्राप्त होता था और जहां से संसार भर के गुनहगारों को स्वर्ग के टिकट बांटे जाते थे।

प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है? आज सदियों से ईसाई मत के यूरोपीय तथा अमेरिकन अनुयायी संसार में जिस शोषण, लूट तथा हिंसा का प्रदर्शन कर रहे हैं,उनको देखते हुए इनके शांति तथा अहिंसा के उपदेश दिखावा मात्र हैं।

माताओ और मित्रो! **ईश्वर का नाम लेकर भी जो छल-कपट का व्यवहार करते हैं वे ढके हुए नास्तिक, प्रकट नास्तिकों से भी अधिक मानवता के शत्रु और विश्व की अशान्ति का कारण हैं।**

परम पिता परमात्मा हमारे ईसाई बन्धुओं को सुद्बुद्धि दे जिससे वे धर्म के नाम पर बुद्धि विज्ञान एवं सृष्टि नियम विरोधी तथा अन्धविश्वास मूलक मान्यताओं को छोड़कर वैदिक सत्य सिद्धान्तों को स्वीकार कर अमूल्य मानव जीवन को सफल और सार्थक करें। अन्त में शान्ति पाठ के साथ आज की कथा का समापन बड़े ही भावनामय वातावरण में किया गया।

सत्यार्थ प्रकाशःमहापुरुषों की दृष्टि में

ऋषि दयानन्द महान् आत्मा थे,उनका ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश उनके विचार स्वातन्त्र्य का उज्ज्वल उदाहरण है,उन्होंने किसी पर झूँठा लांछन नहीं लगाया।

प्रो.जहूर बख्श

ऋषि दयानन्द मेरे गुरु हैं। गुरुदेव रचित सत्यार्थ प्रकाश जीवन में प्रकाश देने वाले सूर्य के समान है।

लाला लाजपतराय

मैंने स्वराज्य का रहस्य सत्यार्थ प्रकाश में पाया अगर यह हमारी प्राचीन जाति सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं के अनुसार चले तो इस पृथ्वी की कोई भी शक्ति हमारे स्वाधीनता के दिनों को नहीं हटा सकती।

श्री सी.एस.रंगा

चौहदवां दिन

इस्लाम मत : एक चिन्तन

ऋषि दयानन्द के महान् ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की पावन कथा का चौदहवां दिन था। इस मंगलमयी कथा से जन साधारण की आत्मा पर से अज्ञान का पर्दा हट रहा था और उनकी आत्मा में ज्ञान की किरणें फूट रही थीं । कथा का अन्तिम दिन होने से स्वभावतः आज श्रोताओं की उपस्थिति अधिक थी। श्री सत्यपाल जी ने समय पर कथा का शुभारम्भ किया।

माताओ और मित्रो! पिछले १३ दिन की कथा से मेरा विश्वास है कि आप सभी पर यह सच्चाई प्रकट हो चुकी है कि ईश्वर एक है,अनेक नहीं। उस ईश्वर की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। ईश्वर प्राप्ति के साधनों का अनुष्ठान ही धर्म है। दूसरे शब्दों में वर्ण और आश्रम के अनुसार अपने अपने कर्तव्यों का पालन,अपने प्रति,परिवार,समाज,राष्ट्र और संसार तथा प्राणि मात्र के प्रति कर्तव्य पालन ही धर्म है,जिसका आदेश और उपदेश स्वयं भगवान ने अपनी कल्याणी वाणी वेद के द्वारा किया है और जो संसार के सभी मानवों के लिए समान है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत काल तक सारा संसार इसी एक-वैदिक धर्म का अनुयायी था। महाभारत काल के बाद जब पतन का दौर शुरु हुआ तो धर्म का स्थान अनेक मत-मजहबों ने ले लिया। इन **मत-मजहबों के प्रवर्त्तकों ने अपने-अपने देश और काल की परिस्थितियों के अनुसार कुछ सुधार भी किये पर धर्म के मूल स्रोत वेद से कट जाने के कारण उनमें अनेक दोष आ गये,जिससे प्रभु का प्यारा मनुष्य समाज खण्ड खण्ड हो गया और धर्म के नाम पर एक मनुष्य दूसरे का शत्रु हो गया।**

सज्जनो! **प्रभु की राह के राहियों को जहां सत्य धर्म के नियमों को जानना आवश्यक है,वहां धर्म के नाम पर प्रचलित मत-मजहबों में आये हुए दोषों को जानकर उनसे बचना और अधिक आवश्यक है।** मित्रो और माताओ! मानव कल्याण की इसी भावना से मानव मात्र के हितैषी ऋषिराज दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के ११ वें समुल्लास(अध्याय) में पौराणिक मत-पन्थों,बारहवें अध्याय में चार्वाक,जैन-बौद्ध मतों और १३ वें अध्याय में ईसाई मत के विषय में विचार किया है। आज हम १४ वें समुल्लास के प्रकाश में इस्लामी मत के सम्बन्ध में संक्षेप में विचार करेंगे।

बन्धुओ,सत्यार्थ प्रकाश के इस अन्तिम अध्याय में अरब देशों में उत्पन्न मुहम्मद साहब द्वारा चलाये गये इस्लाम मत के सम्बन्ध में विचार किया गया है। आज से लगभग १४०० वर्ष पहले मक्का नगर में मुहम्मद साहब का जन्म हुआ था। ये अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे,किन्तु आस्तिकता का भाव इनमें सुदृढ़ था।

इस्लामी ग्रन्थ कुरान की रचना

मुहम्मद साहब की शिक्षाओं का संग्रह'कुरान' के नाम से किया गया है,जो इस्लाम का मान्य

ग्रन्थ है। इस्लाम में ईश्वर की एकता तथा अद्वितीयता पर जोर दिया गया है। पर साथ ही मुहम्मद को ईश्वर का अन्तिम दूत माना जाता है।

तत्कालीन परिस्थितियां

इस्लाम की शिक्षायें तत्कालीन अरब-वासियों के लिये लाभदायक थीं,क्योंकि उस समय अरब जाति बहुदेवतावाद तथा अन्य अनेक अन्ध विश्वासों में फंसी हुई थी।

इस्लाम मत का प्रादुर्भाव

मुहम्मद साहब ने उनके उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं में एकता उत्पन्न की। उन्होंने अरबों के मध्य से अन्धविश्वासों तथा घातक परम्पराओं को विलीन कर दिया और राष्ट्रीय संगठन को कुटुम्ब से ऊपर मानने के लिए एक मत को जन्म दिया जो इस्लाम मत के नाम से प्रकट हुआ,जिसके सिद्धान्त केवल एक खुदा और उसका मसीहा मुहम्मद है-यही थे। यही इस्लाम मत की आधार भित्ति है। इस प्रकार मुहम्मद के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप अरब जाति एकता के सूत्र में बंध गई और उसने राजनैतिक संगठन को भी स्थापित कर लिया।

इस्लाम का प्रचार और तलवार

सज्जनो! कालान्तर में जब इस्लाम का प्रचार सहिष्णुता और समझाने बुझाने से नहीं हुआ तब इस्लाम के अनुयायियों ने अपनी मान्यताओं का प्रचार बलपूर्वक किया । जिन्होंने इस्लाम को स्वीकार करने में संकोच किया,उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। गौरी, गजनवी व पश्चात्वर्ती आक्रमण कारियों ने इस्लाम के प्रसार के लिए तलवार का सहारा लिया।

इस्लाम मत की मान्यतायें

माताओ और मित्रो! कुरान मुस्लिम मत की समस्त मान्यताओं का एकमात्र प्रमुख ग्रन्थ है।[११] इस ग्रन्थ में ये मान्यतायें आयतों के रूप में लिखी गई हैं। इन आयतों में वर्णित कुछ विचार तो अवश्य वेद और विज्ञान के अनुकूल हैं पर अधिकांश मान्यतायें तर्क एवं विज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं,साथ ही कुछ मान्यतायें तो अवैज्ञानिक व अविश्वनीय हैं। इनमें से कुछ आपके समक्ष रखने लगा हूँ।

'अल्लाह' के नाम के साथ प्रारम्भ करने वाला कौन?

बन्धुओ!कुरानकार ने ग्रन्थ का प्रारम्भ'अल्लाह' के नाम के साथ किया है। यहां पर एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि किसी भी ग्रन्थ की रचना से पूर्व जिसका स्मरण ग्रन्थकार करता है,उसको अपने से उच्च मानकर ही करता है,ताकि उसकी कृपा या आशीर्वाद से उसका यह प्रयास सफल हो सके। अतः मित्रो,स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ ईश्वर कृत नहीं हो सकता क्योंकि ग्रन्थकार अलग है और उससे उच्च स्थिति वाला 'अल्लाह'-(ईश्वर) अलग है,जिसका नाम स्मरण कर ग्रन्थ को प्रारम्भ किया है।

११. उनका दावा है कि यह आयतें उन पर अल्लाह की ओर से उतरती थीं, इसी कारण कुरान को मुस्लिम भाई ईश्वरीय मानते हैं। परन्तु कुरान इस पुस्तक में पूर्व में वर्णित ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

खुदा शैतान का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका

बन्धुओ! कुरान की मान्यतानुसार'बाबा आदम' को जब सभी फरिश्तों ने दण्डवत् किया तब शैतान ने अभिमान के वशीभूत होकर उन्हें प्रणाम नहीं किया क्योंकि वह काफिर था।

अब आप विचारिये कि इनका खुदा भूत-वर्तमान और भविष्य की पूरी बातें न जानने से सर्वज्ञ नहीं हो सकता,क्योंकि यदि सर्वज्ञ होता तो उसे शैतान की शैतानियत का भी पता होता और वह उसे पैदा ही नहीं करता।

'पाप क्षमा' से पापों की वृद्धि होती है

मित्रो! कुरान के अनुसार खुदा कुरान और मुहम्मद पर ईमान लाने वाले के पापों को क्षमा कर देता है। लेकिन इस मान्यता में यह भयंकर दोष है कि खुदा का यह उपदेश और भी अधिक पापी बनाने वाला है। क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्वासन मनुष्यों को मिल जायेगा,तब पापों से कोई क्योंकर डरने लगा?

माताओ और मित्रो, **इस्लाम में पुनर्जन्म को नहीं माना गया है।** पुनर्जन्म को न मानने से कर्म फल का सिद्धान्त भी समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में एक ही मां के पेट से जन्मे दो भाइयों में से एक जन्म से ही अन्धा-बहरा या लूला-लंगड़ा तथा कुरूप है और दूसरा बहुत ही स्वस्थ,सुन्दर और सुडौल है। ऐसा क्यों? इसका कोई समाधान ईसाइयों के समान ही इस्लाम के पास भी नहीं है। मुहम्मद द्वारा अंगुली के संकेत से चांद के टुकड़े करना आदि घोर अन्धविश्वासजन्य चमत्कारों की भी मुहम्मदी मत में भरमार है।

बन्धुओ! इस प्रकार इस्लाम का दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष नगण्य प्रायः है। वह कुछ कर्मकाण्डों और मान्यताओं का पुंज मात्र है। उसमें ईसाई और यहूदियों के अनेक विश्वासों को भी ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया है। स्वर्ग और नरक,ईश्वर और देवदूत आदि के सम्बन्ध में इस्लाम की मान्यतायें बड़ी विचित्र हैं। मुसलमान रोजा,नमाज,हज,दान आदि को पुण्य कर्म मानते हैं, परन्तु मांसाहार तथा बकरे आदि पशुओं के वध को धार्मिक कृत्य मानना, अहिंसा प्रेम,करुणा आदि के भाव से दूर ले जाता है।

माताओ और मित्रो! आप जानते हैं कि गंगा का उद्गम (मूल स्रोत) गंगोत्री है। आप यह भी जानते हैं कि गंगोत्री से लेकर हरिद्वार तक गंगा का जल बड़ा ही निर्मल,शुद्ध और रोग-निवारक है। पर जैसे-जैसे गंगा आगे बढ़ती है,उसके शुद्ध जल में अनेकों नदी-नाले मिलते चले जाते हैं और गंगा जल अशुद्ध होता जाता है यहां तक कि हावड़ा (कलकत्ता) के समीप पहुंचते-पहुंचते हुगली नदी के मिलने पर गंगा का जल बड़ा ही अशुद्ध,अपेय और मैला हो जाता है। सज्जनो,ठीक इसी प्रकार धर्म की गंगा का मूल स्रोत या उद्गम पवित्र वैदिक धर्म है। पर इसमें आगे जैसे-जैसे मत मजहबों के नाले मिलते गये,इसका रूप विकृत होता गया। इस्लाम मत तो धर्म गंगा के हुगली वाले जल के समान है। ईसाई मत,इस्लाम मत और पौराणिक मत की गन्दगी-अवैज्ञानिकता और अनर्थकारी

मान्यताओं को देखकर ही विचारशीलों और हमारी नई पीढ़ी को धर्म से घृणा नहीं करनी चाहिए। **उन्हें मैं धर्म गंगा के मूल गंगोत्री रूप पवित्र वेद एवं वैदिक धर्म की मंगलमयी शिक्षाओं को विज्ञान की कसौटी पर कसने और तब उन्हें अपनाकर मनुष्य जीवन को धन्य बनाने के लिए आमंत्रित करता हूँ।**

मित्रो और माताओ! महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के अन्तिम प्रकरण - **'स्वमन्तव्यामन्तव्य'** में वैदिक धर्म की इन्हीं पवित्र मान्यताओं का उल्लेखन किया है। **आर्य समाज के रूप में भी उन्होंने किसी नये मत-मजहब को नहीं चलाया। उन्होंने हमें 'गंगोत्री' के सदृश वैदिक धर्म की भूली हुई पवित्र डगर को ही फिर से बताकर भारत ही नहीं सारे विश्व के सभी मानवों का समान रूप से कल्याण किया है इसी भावना से ही उन्होंने भारतीय मतों की समीक्षा के साथ अभारतीय मत-ईसाई एवं इस्लाम मत आदि को भी 'फिल्टर' करने का साधु प्रयास किया,जिसके लिए मां मानवता ऋषिराज दयानन्द की चिर ऋणी रहेगी।** इसी निवेदन के साथ परमदेव परमात्मा और आप सभी के धन्यवादपूर्वक मैं इस १४ दिवसीय कथा को विराम देना चाहूँगा। इन चौदह दिनों में आप सभी माताओं,बहिनों,मेरे युवक मित्रों और गुरुजनों ने जिस उत्साह से इस लोक मंगलकारी सत्यार्थ प्रकाश की कथा में भाग लेकर इसे सफल बनाया है,उसके लिए आप सभी का अत्यधिक धन्यवाद है। ओम् शम्।।

इस सारे बीच मोहन अपने मित्र की बुद्धि, तर्कना और विचार शक्ति पर मन ही मन निहाल हो रहा था। अपने मित्र की कथन समाप्ति पर वह बोला-मित्र! आपने इन चौदह दिनों की कथाओं में जो कुछ दिया है वह अमर वस्तु है। अपने मित्र के साथ ही आपने अन्य अनेकों साथियों,माताओं और बुजुर्गों को ज्ञान-नेत्र, नहीं-नहीं विज्ञान-नेत्र-देकर अपनी'मित्र' संज्ञा सार्थक कर ली है। हम सभी ग्रामवासी आपके चिर कृतज्ञ हैं।

देव दयानन्द की अपार दया।

मोहन के इस प्रकार कृतज्ञता ज्ञापन करने पर सत्यपाल ने पुनः कहना प्रारम्भ किया- मेरे मित्र,तुमने मेरे प्रति जिस कृतज्ञता का प्रकाशन किया है,उस कृतज्ञता का वास्तविक अधिकारी मैं नहीं,क्रान्ति के अग्रदूत,युग निर्माता महर्षि दयानन्द हैं।

दयानन्द-दया और आनन्द से परिपूर्ण! कितना प्यारा नाम है, मेरे मित्रो,जब विचित्र और कल्पित सनातन धर्म की छाया में हमारा सब कुछ बदल रहा था। यहां तक कि बदलते-बदलते हम इतने बदले कि उसमें हम अपना आत्म-स्वरूप ही खो बैठे थे तब देव दयानन्द ने ही जो कुछ हम भूल गये थे उसे फिर से याद कराया। उसने बदले को बदलकर,उलटे को उलट कर उसे उसका पहला रूप फिर से दिया। उसने अपनी ओर से कुछ भी नया न देकर भूला हुआ वेद का राज-पथ हमें बताया।

दयानन्द वह महान् चिकित्सक था जिसने वेद रूपी चिकित्सा शास्त्र का विधिवत अध्ययन करके भारत राष्ट्र के रोग जर्जरित शरीर के रोग के मूल कारणों का निदान कर उसकी सफल चिकित्सा की। चिकित्सा करते समय इस महान् सर्जन ने फाजिल माद्दे को अपने खण्डन खड्ग से काट गिराया। जहां जरूरत समझी वहीं बिना रोगी की चिल्लाहट और गालियों की चिन्ता किए एक सच्चे डाक्टर के रूप में साहस और वीरता के साथ हर फोड़े का आपरेशन किया। इस दिव्य डाक्टर ने अपनी

आपरेशन चिकित्सा यहां से प्रारम्भ की-यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में कोई देश नहीं है,+++पारसमणि पत्थर सुना जाता है,यह बात तो झूँठी है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।' ++ इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राज-भ्रष्ट होकर विदेशियों से पदाक्रान्त हो रहे।' अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में खण्डन परक ग्यारहवें समुल्लास के बिल्कुल आरम्भ के ये शब्द खण्डन-कार्य के पीछे ऋषि दयानन्द की भावना की बोलती तस्वीर हैं। ये शब्द बतलाते हैं कि भारत की परतन्त्रता और पतन के मूल कारणों को कितनी गहराई से उन्होंने समझा था। ऋषि का मत-मतान्तरों के खण्डन युक्त यह धार्मिक आन्दोलन राष्ट्र जागरण का ही शंखनाद था।

मित्रो! जितने अंशों में ऋषि के कार्यक्रम को अपनाया गया हम सफल रहे और जहां-जहां अपनी अदूरदर्शिता से हमने ऋषि के कार्यक्रम की अवहेलना की वहीं वहीं हमारा राष्ट्र पिछड़ गया।

अच्छा तो मित्रो,अब मैं इस चर्चा को यहीं विराम देते हुए अन्त में इतना ही चाहूँगा कि यदि 'सत्यार्थ प्रकाश' की कथा से आप लोगों को कुछ भी प्रकाश मिला है तो उससे अपने अपने जीवनों को प्रकाश युक्त बनाकर स्वयं वेदपथ पर चलेंगे तो अन्यों को अंधियारी से निकालकर 'सत्यार्थ' के प्रकाश में वेद पथ पर चलायेंगे । इत्योमशम्।

श्री सत्यपाल जी द्वारा आज की अन्तिम कथा की समाप्ति पर शान्तिपाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हो गई।

मुखिया चन्दनसिंह एवं मोहन के जीवन में अब इतना परिवर्तन आ गया था कि देखने वाले देखते रह जाते। उनकी जीवन सुगन्धि अब अन्य गन्धहीन पुष्पों को भी सुगन्धित कर सकने की क्षमता रखती थी। प्रातः सायं प्रभु की पावन गोद में बैठकर आत्म-चिन्तन एवं अन्तःदर्शन उनका दैनिक नियम बन गया था। आध्यात्मिक भूख लगने लगी थी और उसकी तृप्ति के बिना उन्हें चैन कहां? सत्यपाल के साथ अब उनका दैनिक सत्संग चलता। ऋषि कृत ग्रन्थ एवं वैदिक साहित्य का श्रवण, पठन, मनन किये बिना उन्हें चैन कहां? नम्रता और सादगी अब उनके जीवन के भूषण बन चले थे! गांव के नर-नारी पहले भी उनका आदर करते थे,परन्तु निश्चय ही एक मुखिया पुत्र होने के नाते,भय ही उसका प्रेरक कारण था। परन्तु अब जो उनका आदर होता वह एक 'मानव' के नाते,श्रद्धा और एकमात्र श्रद्धा ही उसकी प्रेरक जननी थी **और इस श्रद्धा का मूल स्रोत 'सत्यार्थ प्रकाश' की कथा बनी।**

प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमा चन्दनपुर में एक नया उल्लास लेकर आती है। बूढ़े, बच्चे, युवक, युवती सभी अपने मुखों पर एक अलौकिक दीप्ति लिए चौपाल की ओर आते दिखाई पड़ते हैं। ठीक समय पर सम्पूर्ण वातावरण 'स्वाहा-स्वधा' के पवित्र संगीत से गूँज उठता है। ईश विनय,महर्षि महिमा गान के साथ ही विविध विषयों की कथाओं के पश्चात् ग्रामोत्थान विषयक विविध वार्तायें चलती हैं। इस प्रकार चन्दनपुर नाम के अनुरूप सही अर्थों में चन्दनपुर बन गया है।